अक्टूबर–2023

अखण्ड ज्योति

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

वर्ष – 87 | अंक – 10 | प्रति – ₹ 25 | ₹–300 वार्षिक

11 भगवन्मय जीवन ही है पूर्ण जीवन

21 लोकजयी अजातशत्रु

33 सार्वभौम है भारतीय ज्ञान

42 सांस्कृतिक एकता के सूत्र

अपने ऊपर विश्वास कीजिए

"विश्वास कीजिए कि वर्तमान निम्न स्थिति को बदल देने की सामर्थ्य प्रत्येक मनुष्य में पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। आप जो सोचते हैं, विचारते हैं, जिन बातों को प्राप्त करने की योजनाएँ बनाते हैं, वे आंतरिक शक्तियों के विकास से अवश्य प्राप्त कर सकते हैं।

विश्वास कीजिए कि जो कुछ महत्ता, सफलता, उत्तमता, प्रसिद्धि, समृद्धि अन्य व्यक्तियों ने प्राप्त की है, वह आप भी अपनी आंतरिक शक्तियों द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। आपमें वे सभी उत्तमोत्तम तत्त्व वर्तमान हैं, जिनसे उन्नति होती है। न जाने कब, किस समय, किस अवसर, किस परिस्थिति में आपके जीवन का आंतरिक द्वार खुल जाए और आप सफलता के उच्च शिखर पर पहुँच जाएँ।

विश्वास कीजिए कि आपमें अद्भुत आंतरिक शक्तियाँ निवास करती हैं। अज्ञानवश आप मन की अज्ञात, विचित्र और रहस्यमय शक्तियों के भंडार को नहीं खोलते। आप जिस मनोबल, आत्मबल या निश्चयबल का करिश्मा देखते हैं,वह कोई जादू नहीं, वरन आपके द्वारा संपन्न होने वाला एक दैवी नियम है। सब में ये असाधारण एवं चमत्कारिक शक्तियाँ समान रूप से व्याप्त हैं। संसार के अगणित व्यक्तियों ने जो महान कार्य किए हैं, वे आप भी कर सकते हैं।"

—श्रीराम शर्मा आचार्य

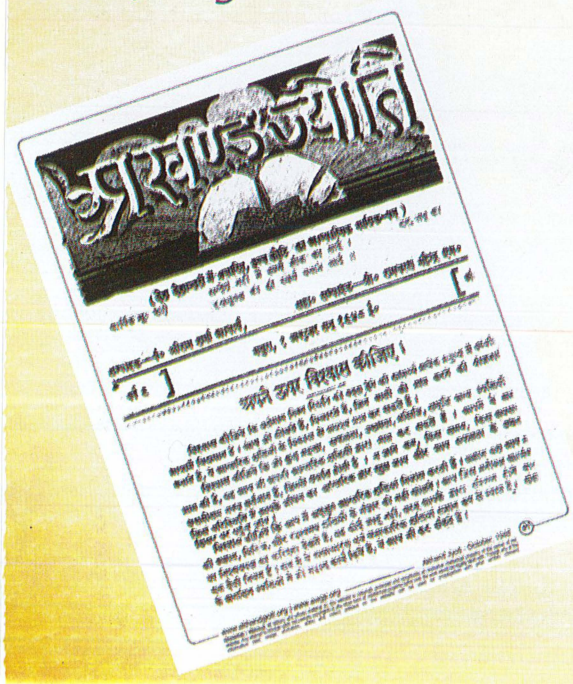

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

वर्ष	:	87
अंक	:	10
अक्टूबर	:	2023
आश्विन-कार्तिक	:	2080
प्रकाशन तिथि	:	01.09.2023

वार्षिक चंदा

भारत में	:	300/-
विदेश में	:	2800/-

आजीवन (बीसवर्षीय)

भारत में	:	6000/-

वेदांत

ऋषियों, मुनियों, तीर्थंकरों, अवतारों की इस पावन भूमि से ज्ञान की दोनों धाराएँ आदिकाल से अविरल रूप से बहती चली आई हैं। ज्ञान की वो धारा, जो हमसे बाहर को बहती है, वो विज्ञान कहलाती है और ज्ञान की वो धारा, जो हमें-हमारे सत्यस्वरूप में प्रतिष्ठित करती है, वो आध्यात्मिक ज्ञान कहलाती है। भारत की भूमि का यह सौभाग्य रहा कि इसके गर्भ से उस उच्चस्तरीय ज्ञान की एक नहीं, वरन सैकड़ों धाराएँ अविच्छिन्न रूप से बहती हुई आई हैं, उनमें सबसे पवित्र धारा वेदांत की धारा है। विचारकों ने वेदांत को भारतीय आध्यात्मिक चिंतन का मुकुटमणि कहकर के पुकारा है। जिस समय अन्य देश अज्ञान के अंधकार से आच्छादित होकर बर्बरता का जीवन व्यतीत कर रहे थे तब भारत के गगन में उगे वेदांतरूपी ज्ञानसूर्य ने श्रुतियों के चरम सिद्धांत के रूप में, आत्मज्ञान की स्वयंसिद्धि के रूप में अविद्या के घने तिमिर को छिन्न-भिन्न कर दिया। इसीलिए स्मृति कहती है कि—

स्वं स्वं चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।

कुछ वैसे ही चरित्रों ने आकर, चाहे वो आचार्य शंकर का अद्वैत वेदांत का दर्शन रहा हो या भास्कर का भेदाभेद का, रामानुज का विशिष्टाद्वैत रहा हो या मध्व का द्वैत, निंबार्क का द्वैताद्वैत हो या वल्लभ का शुद्धाद्वैत—इन सबके सिद्धांतों ने इस शाश्वत सत्य को पुनः प्रकाशित किया कि ब्रह्म जगत् का उपादान भी हैं और निमित्त कारण भी। वेदांत की धारा ही शाश्वत सत्य की उपलब्धि की धारा है।

विषय सूची

- आवरण-1 — 1
- आवरण-2 — 2
- वेदांत — 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  प्राणियों की जीवनधारा—सूर्य — 5
- आत्मविजेता करते हैं क्रोध पर विजय — 7
- **पर्व विशेष (विजयादशमी)**
  विजय का महापर्व—विजयादशमी — 8
- भगवन्मय जीवन ही है पूर्ण जीवन — 11
- तपस्या — 13
- निष्काम भक्ति से होती है भगवत्प्राप्ति — 14
- एकाग्रता की शक्ति का अर्जन करते रहें — 17
- ऐसे जुड़ें परमात्मा से — 19
- **पूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा-समझा—13**
  लोकजयी अजातशत्रु — 21
- साधना में सर्वोपरि है समर्पण — 23
- सपनों के झरोखे से अस्तित्व के पारलौकिक दर्शन — 28
- ऐसे हुआ संत एकनाथ को भगवद्दर्शन — 31
- सार्वभौम है भारतीय ज्ञान — 33
- **चेतना की शिखर यात्रा—253**
  सूक्ष्म में प्रवेश — 36
- सांस्कृतिक एकता के सूत्र — 42
- जो मर्म को छू जाए, वही शिष्टाचार है — 45
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—174**
  मनोआध्यात्मिक उपचारों का चिंता एवं अवसाद पर प्रभाव — 46
- कठिन समय का सामना कुछ ऐसे करें — 50
- **युगगीता—281**
  राजसी दान का अर्थ — 52
- **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
  प्रबुद्धों को आमंत्रण (उत्तरार्द्ध) — 54
- **विश्वविद्यालय परिसर से—220**
  दीक्षाभूमि बना विश्वविद्यालय — 62
- **अपनों से अपनी बात**
  नवनिर्माण के युगनायक हैं हम — 64
- राह नई तैयार है (कविता) — 66
- आवरण—3 — 67
- आवरण—4 — 68

आवरण पृष्ठ परिचय

श्रीराम—दशहरे पर उनका दर्शन

अक्टूबर-नवंबर, 2023 के पर्व-त्योहार

सोमवार	02 अक्टूबर	गांधी जयंती / शास्त्री जयंती	रविवार	05 नवंबर	अहोई अष्टमी
शनिवार	07 अक्टूबर	मातृनवमी	गुरुवार	09 नवंबर	रमा एकादशी
मंगलवार	10 अक्टूबर	इंदिरा एकादशी	शुक्रवार	10 नवंबर	धनतेरस
शनिवार	14 अक्टूबर	सर्व पितृमोक्ष अमावस्या	रविवार	12 नवंबर	रूप चतुर्दशी/ दीपावली
रविवार	15 अक्टूबर	नवरात्रारंभ	सोमवार	13 नवंबर	सोमवती अमावस्या
शुक्रवार	20 अक्टूबर	सूर्य षष्ठी	मंगलवार	14 नवंबर	बेसतुबरस/ अन्नकूट
मंगलवार	24 अक्टूबर	विजयादशमी	बुधवार	15 नवंबर	भाईदूज
बुधवार	25 अक्टूबर	पापांकुशा एकादशी	रविवार	19 नवंबर	सूर्य षष्ठी
शनिवार	28 अक्टूबर	शरद पूर्णिमा / वाल्मीकि जयंती	गुरुवार	23 नवंबर	देव प्रबोधिनी एकादशी
बुधवार	01 नवंबर	करवा चौथ	सोमवार	27 नवंबर	गुरुनानक जयंती/ पूर्णिमा

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** ***—संपादक***

विशिष्ट सामयिक चिंतन

प्राणियों की जीवनधारा—सूर्य

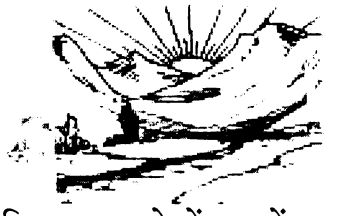

सूर्य को इस सृष्टि की आत्मा और समस्त प्राणियों की जीवनधारा कहा गया है। सूर्य से निकलने वाली ऊर्जा ही पृथ्वी पर जीवन का आधार बनती है। यदि सूर्य की किरणें इस धरती पर ऊर्जा व ऊष्मा के रूप में प्राणियों के निर्वहन के लिए आवश्यक जीवनधारा को उन तक न लेकर के आएँ तो इस धरती को मंगल व अन्य ग्रहों की तरह से जीवनविहीन होते देर न लगे।

भगवान भुवनभास्कर की रश्मियाँ न केवल प्राणिमात्र के लिए गरमी व प्रकाश का स्रोत हैं, वरन वे उनके आरोग्य की रक्षा के लिए आवश्यक आधार भी सदा तैयार करती रहती हैं। यही कारण है कि आधुनिक चिकित्सा हो या वर्षों से चली आ रही भारतीय आयुर्वेदिक परंपरा, सभी सूर्य से मिलने वाली जीवनदायिनी ऊर्जा को मानवीय स्वास्थ्य व आरोग्य के लिए अतुलनीय बताते हैं।

वनस्पतियाँ हों या औषधियाँ, शाक-सब्जियाँ हों या अन्न पदार्थ इन सभी की हरीतिमा को बनाए रखने के अतिरिक्त उनमें पोषण पदार्थों की विपुलता, मात्र सौर-ऊर्जा से या सूर्य की किरणों के माध्यम से ही विकसित हो पाती है।

यह सर्वविदित है कि फलों में, सब्जियों में जीवन के लिए मूल्यवान विटामिन व मिनरल, उनके छिलकों से ही प्राप्त किए जा सकते हैं। अकेले सेब का ही उदाहरण लें, तो एक सेब में अनुमानत: 4.4 ग्राम फाइबर होता है, जिसमें से अकेले छिलके में 2.7 ग्राम फाइबर होता है। इस छिलके को उतार फेंकने पर इतना फाइबर, करीब कुछ मि.ग्रा. विटामिन-सी व विटामिन-ए भी कम हो जाते हैं।

दुर्भाग्य ही है कि आज अनेकों स्थानों पर छिलकों को हटाकर अन्न पदार्थों को ग्रहण करने की परंपरा प्रारंभ हो गई है; जबकि सहजता से इस तथ्य का अनुमान लगाया जा सकता है कि ये छिलके, सौर-ऊर्जा से अनुप्राणित पौष्टिक पदार्थों को अपने अंदर समाहित किए हुए हैं।

सामान्य प्रचलन में आजकल दालों को, कोमल फलों को छिलके उतारकर ग्रहण करना फैशन माना जाता है। तथाकथित संभ्रांत वर्ग, भोजन को छिलके के साथ ग्रहण करने पर अपनी तौहीन-सी अनुभव करते हैं, परंतु ऐसा करते समय वे इस सत्य से अपरिचित रह जाते हैं कि ऐसा करना लगभग ऐसा ही है, जैसे सोने की पॉलिश को उतारकर पीतल को बेचने का प्रयत्न करना अथवा गूदा फेंककर गुठली चबाने का प्रयास करना।

अन्न ग्रहण करने का, आहार ग्रहण करने का मूल उद्देश्य शरीर को जीवनदायिनी प्राणधारा से संयुक्त करना है न कि उसके रूप, रस व गंध की समीक्षा करना है। आजकल लोगों पर कुछ ऐसा ही मतिभ्रम सवार है—जहाँ वे फलों, शाकों को सौंदर्यपूर्ण दिखाने के लिए ऐसा सब कुछ करने को तैयार हैं, चाहे इस मूर्खता में उन्हें उनके पौष्टिक आहार से वंचित ही क्यों न रहना पड़े।

भोज्य पदार्थों के छिलके को उतारकर उन्हें ग्रहण करना भगवान सूर्य से विशेष रूप से प्राप्त सौर-ऊर्जा से समाविष्ट पुष्टि की धारा का अपमान व तिरस्कार करना है। संपूर्ण अंतरिक्ष की यात्रा करके हमारे द्वार तक उनके द्वारा भेजी गई जीवनधारा को, बहुमूल्य जीवन तत्त्व को अपमानित करके घर से निकाल देना है।

छिलकों के साथ उन्हें ग्रहण करने पर संभव है कि कुछ कड़ुआपन हमें स्वीकार करना पड़ता, परंतु उनको हटा देने पर जितने पौष्टिक तत्त्वों से हम वंचित रह जाते हैं, वे कम मूल्य के नहीं हैं। गेहूँ की भूसी हम पशुओं को खिलाते तो नजर आते हैं, पर स्वयं के लिए इसका उपयोग करने में हम न जाने क्यों पीछे रह जाते हैं।

गेहूँ की भूसी का यदि उदाहरण लें तो इसके एक 58 ग्राम के अंश के अंदर पर्याप्त कैलोरी, फाइबर और आयरन उपस्थित हैं और यह विटामिन ए, ई, के, थायामिन, राइबोफ्लेविन, नियासिन, विटामिन बी-6, बी-12 व क्लोरीन का महत्त्वपूर्ण स्रोत है, परंतु इसका उपयोग करने के स्थान पर हम इसे कूड़े के रूप में फेंकते नजर आते हैं।

सूर्य की रश्मियाँ जो लाभ फलों, शाकों, वनस्पतियों को देती हैं, वही लाभ ये मनुष्य की त्वचा को भी पहुँचाती हैं। हमारी दैनिक आवश्यकता का अधिकांश विटामिन-डी सूर्य की किरणों से ही हमें मिलता है। यदि प्रतिदिन मात्र 10-15 मिनट भी सूरज की किरणों के ग्रहण किए जाएँ तो हमारी नित्यप्रति की विटामिन-डी की आवश्यकता अनायास ही पूरी हो जाती है।

विटामिन-डी की कमी को दूर करने के लिए जिन दवाइयों को लेना पड़ता है, वो दवाइयाँ हजारों रुपये तक की आती हैं और यही विटामिन-डी बिना किसी मूल्य के, मात्र अपना द्वार खोलकर बाहर बरामदे में बैठ जाने से हमें नि:शुल्क मिल जाता है, पर तब भी हम उसका लाभ उठाने से न जाने क्यों रह जाते हैं।

गरमी के दिनों में लोग अक्सर यह शिकायत करते हुए पाए जाते हैं कि सूर्यदेव की गरमी से लू लग जाएगी, अत: हमें एयर कंडीशनिंग में बैठना चाहिए। ये कहने वाले यह भूल जाते हैं कि सूर्यदेव अरबों वर्षों से वही हैं, पर एयरकंडीशन मात्र 50 वर्ष पुराना आविष्कार है तो हमसे पहले की पीढ़ियाँ क्या सदा लू से ही पीड़ित रहा करती थीं? फिर एयर कंडीशनिंग में सदा बैठे रहना संभव नहीं है।

ऐसा करने वाले तापमान की विषमता के कारण सरदी-जुकाम, खाँसी से पीड़ित नजर आते हैं। यदि सही तरह से, प्रात:काल, प्रतिदिन सूर्य की ऊष्मा को अंतरिक्ष से उतर रहे अनुदान की तरह ग्रहण किया जाए तो ऐसी विपन्नता का सामना न करना पड़े।

यदि कोई घर इत्यादि बनाता है तो उसमें प्रकाश की, हवा के आवागमन की व्यवस्था का संपूर्ण ध्यान रखा जाता है, ताकि घर में सीलन न पड़े। अंधकार न हो, गंदगी इत्यादि न हो। यह शरीर भी भगवान का मंदिर है तो इसमें भी भगवान सूर्य के प्रकाश की समुचित व्यवस्था की जानी अत्यंत आवश्यक है।

मनुष्य वे हैं, जो अपना स्वार्थ तो साधते हैं; पर उचित-अनुचित का ध्यान रखते हैं। पाप से डरते हैं और अपनी नियत मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करते।

भगवान सूर्य एक उच्चकोटि के वैद्य हैं, जो अपनी ऊर्जा, ऊष्मा के माध्यम से हमारे लिए निरोगी काया की व्यवस्था खरबों मीलों की दूरी से बना देते हैं। चाहे उनकी यह व्यवस्था हमारी त्वचा के लिए हो अथवा फलों-शाकों-वनस्पतियों के पोषण के लिए, इन सबमें प्राण का प्रवाह, आरोग्य का संवर्द्धन उनकी किरणों के माध्यम से ही होता है।

इस सूत्र को ध्यान में रखते हुए अपनी आहार पद्धति को परिवर्तित करने की आवश्यकता तो है ही, साथ ही अपनी आरोग्य की धारा को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए—हमें स्वयं भी सूर्य की ऊर्जा से निरंतर, अधिकाधिक संपर्क स्थापित करने की आवश्यकता है। ❑

आत्मविजेता करते हैं क्रोध पर विजय

श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है—'**कामात् क्रोधोऽभिजायते**' अर्थात कामनाओं में विक्षेप उत्पन्न होने से क्रोध होता है। मानवीय दुर्बलताओं में क्रोध का स्थान सर्वोपरि है। मनुष्य के व्यक्तित्व का जितना ह्रास क्रोध के कारण होता है—उतना अन्य किसी कारण से नहीं होता।

इसे ऐसे भी समझा जा सकता है कि क्रोध, हमारे जीवन में उभरने वाला एक ऐसा आवेग है, जिसका समय पर निराकरण न होने पाने पर वह आदत का हिस्सा बन जाता है और फिर कई लोगों का तो व्यक्तित्व ही उसी आधार पर परिभाषित होने लगता है।

कई लोगों में ऐसा मानसिक जटिलताओं के कारण भी होता है—वे अपनी मानसिक उलझनों में इतने उलझे-बेचैन रहते हैं कि चाहे-अनचाहे, जिस-तिस पर क्रोध उनका निकल आता है। इस तरह देखें तो क्रोध के सामान्यरूपेण तीन कारण प्रमुख हैं।

पहला—कामनापूर्ति में उत्पन्न हुए अवरोध के कारण,

दूसरा—असफलता से उभरी खिन्नता के कारण एवं

तीसरा—आदत में उतरा हुआ क्रोध, जो व्यक्तित्व का हिस्सा बन चुका होता है।

कारण जो भी हों, क्रोध का अन्य मनोविकारों से गहरा व घनिष्ठ संबंध है। अस्थिरता, कुंठा, अहंकार, क्रूरता आदि उसके सहयोगी हैं। चिड़चिड़ापन व्यक्तित्व की दृष्टि से दुर्बल व्यक्तियों में उत्पन्न होने वाला भावावेश ही है।

क्रोध पर विजय प्राप्त करने वाले ही आत्मविजेता कहे जाते हैं। महर्षि बोधायन के शिष्य गार्ग्य एक दिन अपनी शय्या से न उठे तो अन्य शिष्यों ने जाकर महर्षि से उनकी शिकायत की। कारण जानने पर पता चला कि रात में एक सर्प आकर उनके पैरों के नीचे लेट गया और वे करुणावश कि उसकी निद्रा भंग न हो, इस कारण से पैरों को नहीं हिला रहे।

तृप्तः स्वच्छेन्द्रियो नित्यमेकाकी रमते तु यः॥ *—अष्टावक्र गीता*

अर्थात जो पुरुष नित्य है, तृप्त है, शुद्ध इंद्रियों वाला और सदा अकेला रमण करने वाला है, उसी को ज्ञान एवं अभ्यास का फल प्राप्त होता है।

थोड़ी देर में सर्प जागा और अपने गंतव्य को चला गया तो गार्ग्य भी अपने नित्यकर्म में संलग्न हो गए। अनेकों ने इस घटना को साहस के रूप में लिया तो वहीं महर्षि बोधायन ने इसे आत्मविजय का पर्याय बताया और यह कहा कि आत्मविजेता ही भावावेश पर नियंत्रण रख सकते हैं और ऐसे व्यक्तित्व ही क्रोध, भय, आवेग पर संपूर्ण नियंत्रण रख पाते हैं।

उन्होंने आगे कहा कि व्यक्तित्व के परिष्कार पर बढ़ चले प्रत्येक साधक के लिए आत्मविजय का यह चरण अनिवार्य हो जाता है। ❑

विजय का महापर्व – विजयादशमी

विजयादशमी सांस्कृतिक एकता का प्रतीक है। विजयादशमी विजय का महापर्व है, जो अस्तित्व को आनंदातिरेक से सराबोर करता है। विजयपथ पर केवल धर्मपरायण, साहसी ही पाँव रखते हैं, जिनमें जिंदगी की चुनौतियों का सामना कर सकने का साहस है, वे ही इस राह पर चल पाते हैं।

भारत एक विशाल देश है। इसकी भौगोलिक संरचना जितनी विशाल है, उतनी ही विशाल है इसकी संस्कृति। यह इस भारत की सांस्कृतिक विशेषता ही है कि कोई भी पर्व समस्त भारत में एक जैसी श्रद्धा और विश्वास के साथ मनाया जाता है, भले ही उसे मनाने की विधि अलग हो। ऐसा ही एक पावन पर्व है—दशहरा, जिसे विजयादशमी के नाम से भी जाना जाता है।

दशहरा भारत का एक महत्त्वपूर्ण त्योहार है। विश्व भर में भारतीय इसे हर्षोल्लास के साथ मनाते हैं। यह आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि को मनाया जाता है। इस दिन भगवान विष्णु के अवतार राम ने रावण का वध कर असत्य पर सत्य की विजय प्राप्त की थी।

आतंकी एवं आततायी रावण माता सीता का अपहरण करके लंका ले गया था। भगवान राम ने युद्ध से पहले नौ दिन तक माँ आदिशक्ति की आराधना की और दसवें दिन रावण का वध कर माता सीता को मुक्त कराया।

दशहरा—वर्ष की तीन अत्यंत महत्त्वपूर्ण तिथियों में से एक है, जिनमें चैत्र शुक्ल की एवं कार्तिक शुक्ल की प्रतिपदा भी सम्मिलित हैं। इस दिन नया कार्य प्रारंभ करना अति शुभ माना जाता है। यह शक्ति की पूजा का पर्व है।

इस दिन देवी दुर्गा की भी पूजा की जाती है। दशहरे के दिन नीलकंठ के दर्शन को बहुत ही शुभ माना जाता है। दशहरा नवरात्र के उपरांत मनाया जाता है। देशभर में दशहरे का उत्सव बहुत ही धूम-धाम से मनाया जाता है। जगह-जगह मेले लगते हैं।

दशहरे से पूर्व रामलीला का आयोजन किया जाता है। इस दौरान नवरात्र भी होते हैं। कहीं-कहीं रामलीला का मंचन होता है, तो कहीं जागरण होते हैं। दशहरे के दिन रावण के पुतले का दहन किया जाता है।

इस दिन रावण, उसके भाई कुंभकर्ण और पुत्र मेघनाद के पुतले जलाए जाते हैं। कलाकार राम, सीता और लक्ष्मण के रूप धारण करते हैं और अग्निबाण भी इन पुतलों को मारते हैं। पुतलों में पटाखे भरे होते हैं, जिससे वे आग लगते ही जलने लगते हैं।

समस्त भारत में विभिन्न प्रदेशों में दशहरे का यह पर्व विभिन्न प्रकार से मनाया जाता है। कश्मीर में नवरात्र के नौ दिन माता रानी को समर्पित रहते हैं। इस दौरान लोग उपवास रखते हैं। एक परंपरा के अनुसार नौ दिनों तक लोग माता क्षीरभवानी के दर्शन करने के लिए जाते हैं। यह मंदिर एक झील के मध्य स्थित है।

हिमाचल प्रदेश के कुल्लू का दशहरा बहुत प्रसिद्ध है। रंग-बिरंगे वस्त्रों से सुसज्जित पहाड़ी

लोग अपनी परंपरा के अनुसार अपने ग्रामीण देवता की शोभायात्रा निकालते हैं। इस दौरान वे तुरही, बिगुल, ढोल, नगाड़े आदि वाद्य बजाते हैं तथा नाचते-गाते चलते हैं।

यह शोभायात्रा नगर के विभिन्न भागों से होती हुई मुख्य स्थान तक पहुँचती है। फिर ग्रामीण देवता श्री रघुनाथ जी की पूजा से दशहरे के उत्सव का शुभारंभ होता है।

हिमाचल प्रदेश के अलावा पंजाब तथा हरियाणा राज्य में दशहरे पर नवरात्र की धूम रहती है। इस समय स्थानीय लोग उपवास रखते हैं तथा रात में सामूहिक जागरण होता है। यहाँ भी रावण-दहन होता है और मेले लगते हैं। बंगाल, ओडिशा एवं असम में दशहरा दुर्गा पूजा के रूप में मनाया जाता है।

इस अवसर पर बंगाल में पाँच दिवसीय उत्सव मनाया जाता है। ओडिशा और असम में यह पर्व चार दिन तक चलता है। यहाँ भव्य पंडाल तैयार किए जाते हैं तथा उनमें देवी दुर्गा की मूर्तियाँ स्थापित की जाती हैं व देवी दुर्गा की विधिवत् पूजा-अर्चना की जाती है।

दशमी के दिन विशेष पूजा का आयोजन किया जाता है। महिलाएँ देवी के माथे पर सिंदूर चढ़ाती हैं। इसके पश्चात देवी-प्रतिमाओं का विसर्जन किया जाता है। विसर्जन यात्रा में असंख्य लोग सम्मिलित होते हैं।

गुजरात में भी दशहरे के उत्सव के दौरान नवरात्र की धूम रहती है। कुँआरी लड़कियाँ अपने-अपने सिर पर मिट्टी के रंगीन घड़े रखकर नृत्य करती हैं, जिसे गरबा कहा जाता है। पूजा-अर्चना और आरती के बाद डांडिया रास का आयोजन किया जाता है।

महाराष्ट्र में भी नवरात्र में नौ दिन माँ दुर्गा की उपासना की जाती है तथा दसवें दिन विद्या की देवी सरस्वती की स्तुति की जाती है। इस दिन बच्चे आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए माँ सरस्वती के अलौकिक चिह्नों की पूजा करते हैं।

तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश एवं कर्नाटक में दशहरे के उत्सव के दौरान लक्ष्मी, सरस्वती और दुर्गा की पूजा की जाती है। पहले दिन धन और समृद्धि की देवी लक्ष्मी का पूजन होता है। दूसरे दिन कला एवं विद्या की देवी सरस्वती की अर्चना की जाती है और अंतिम दिन शक्ति की देवी दुर्गा की उपासना की जाती है।

कर्नाटक के मैसूर का दशहरा बहुत प्रसिद्ध है। मैसूर में दशहरे के समय पूरे शहर की गलियों को प्रकाश से सुसज्जित किया जाता है और हाथियों का शृंगार कर पूरे शहर में एक भव्य शोभायात्रा निकाली जाती है। इन द्रविड़ प्रदेशों में रावण का दहन नहीं किया जाता है।

छत्तीसगढ़ राज्य के बस्तर में भी दशहरा बहुत ही अलग तरीके से मनाया जाता है। यहाँ इस दिन देवी दंतेश्वरी की विधिवत् आराधना की जाती है। दंतेश्वरी माता बस्तर अंचल के निवासियों की आराध्य देवी हैं, जो यहाँ के लोगों के लिए दुर्गा का ही रूप हैं।

यहाँ यह त्योहार 75 दिन यानी श्रावण मास की अमावस से आश्विन मास की शुक्ल त्रयोदशी तक चलता है। प्रथम दिन जिसे काछिन गादि कहते हैं, देवी से समारोह आरंभ करने की अनुमति ली जाती है। देवी काँटों की सेज पर विराजमान होती हैं, जिसे काछिन गादि कहा जाता है।

बताया जाता है कि यह समारोह लगभग पंद्रहवी शताब्दी में आरंभ हुआ था। काछिन गादि के बाद जोगी-बिठाई होती है, तदुपरांत भीतर रैनी (विजयादशमी) और बाहर रैनी (रथयात्रा) निकाली जाती है। अंत में मुरिया दरबार का आयोजन किया

जाता है। इसका समापन आश्विन शुक्ल त्रयोदशी को ओहाड़ी पर्व से होता है।

दशहरे के दिन वनस्पतियों का पूजन किया जाता है। रावण दहन के पश्चात शमी नामक वृक्ष की पत्तियों को स्वर्ण पत्तियों के रूप में एकदूसरे को ससम्मान प्रदान कर सुख-समृद्धि की कामना की जाती है।

इसके साथ ही अपराजिता (विष्णुक्रांता) के पुष्प भगवान राम के चरणों में अर्पित किए जाते हैं। नीले रंग के पुष्प वाला यह पौधा भगवान विष्णु को प्रिय है।

दशहरे का केवल धार्मिक महत्त्व ही नहीं, अपितु यह हमारी सांस्कृतिक एकता का भी प्रतीक है। विजयादशमी का यह महापर्व अनीति, अत्याचार और आतंक से लोहा लेने की शिक्षा प्रदान करता है।

इसी कारण '**यतो धर्मः ततो जयः**' के महासत्य को प्रमाणित करते हुए विजयादशमी धर्म विजय का महापर्व बन गया है। ❑

महेंद्र पर्वत पर गंगा के सुरम्य तट पर दीर्घतपस नाम के एक ब्राह्मण अपनी धर्मपत्नी सहित निवास करते थे। दीर्घतपस स्वाध्यायशील, धार्मिक और ईश्वरपरायण महात्मा थे, उनकी धर्मपत्नी भी सुशील स्त्री थीं। समय पाकर उनके उन्हीं के गुणों वाले दो पुत्र जन्मे। बड़े का नाम पुण्य और छोटे का नाम पावन रखा गया।

पुण्य बड़ा तपस्वी था। थोड़े ही समय में उसने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया। अब उसे संसार से किसी प्रकार का न राग था न द्वेष, न मोह न आसक्ति। वह निष्काम भावना से सांसारिक कर्त्तव्यों का पालन करता। पावन शिक्षित था, सुशील था, किंतु उसे आत्मबोध न हुआ था।

एक दिन दीर्घतपस का देहांत हो गया, उससे पुण्य को दुःख न हुआ, पर पावन ने कई दिन पिता की याद में रो-रोकर बिताए। समय का संयोग—कुछ दिनों में माता का भी देहावसान हो गया। अब तो पावन पर एक तरह से वज्रपात हो गया। मारे दुःख के उसने कई दिनों तक भोजन भी ग्रहण न किया। पुण्य ही ऐसा था, जिसे न तो पिता की मृत्यु का दुःख हुआ और न माता के निधन का। उसने दोनों का मृतक संस्कार और श्राद्ध-तर्पण शास्त्रीय विधान से संपन्न किया।

काफी समय बीत जाने पर पावन का शोक जब समाप्त न हुआ तो एक दिन पुण्य ने उसे समीप बुलाकर समझाया—"तात! हमारे माता-पिता ने इस लोक में धर्म और पुण्य का पर्याप्त अर्जन किया, सो वे जीवनमुक्त हो गए। शरीर तो वस्त्र की तरह है, आत्मा अनेक शरीर बदलती रहती है, उसके लिए दुःख किस बात का।"

इतना समझाने पर भी पावन को बोध न हुआ तो पुण्य ने योगदृष्टि से उसे उसके कई जन्मों का हाल दिखाया। वही पावन दशार्णव देश में वानर, तुषार में राजपुत्र, त्रिगर्त देश में गधा और शाल में वनपक्षी के रूप में जन्मा था। सौ जन्मों में अनेक योनियों का विवरण देखकर पावन का मोह छूटा और तब उसे आत्मज्ञान की प्राप्ति हुई।

भगवन्मय जीवन ही है पूर्ण जीवन

माधवदास दस वर्ष के थे, तभी उनके माता-पिता स्वर्ग सिधार गए थे। माता-पिता के रहते हुए ही उनका यज्ञोपवीत संस्कार हो चुका था। यज्ञोपवीत संस्कार हो जाने के बाद वे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए नियमित संध्यावंदन करने लगे। सुबह ब्राह्ममुहूर्त में उठकर महामंत्र, वेदमंत्र गायत्री मंत्र का जप करने लगे। वे प्रात:कालीन उदीयमान सविता देव का ध्यान करते हुए महामंत्र गायत्री का जप किया करते। प्रात: अग्निहोत्र करते, वेद, उपनिषद्, पुराण आदि का स्वाध्याय करते। तत्पश्चात कुछ सात्त्विक आहार लेकर कृषिकार्य में प्रवृत्त होकर जीविकोपार्जन के साधन जुटाते।

कृषिकार्य से निवृत्त होकर वे सायंकाल घर आते, पुन: स्नान करते और महामंत्र गायत्री का जप करने के पश्चात कुछ हलका सात्त्विक आहार लेकर शयन को चले जाते। शयन करते हुए भी वे मानसिक रूप से गायत्री मंत्र का अर्थचिंतन करते हुए सविता देव को प्रणाम करते हुए योगनिद्रा में चले जाते। माधवदास अब 24 वर्ष के हो चुके थे। वे तीर्थयात्रा को वृंदावन धाम गए हुए थे। वहाँ उनकी मुलाकात एक सिद्ध संत से हो गई। वे सिद्ध माधवदास को अपने आश्रम ले गए।

भगवान के प्रति उनके अनुराग को देखते हुए सिद्ध संत ने उन्हें गायत्री की उच्चतर साधनाओं के लिए प्रेरित किया। माधवदास गुरु के आश्रम में एक महीने तक ठहरे। गुरु से साधनासंबंधी मार्गदर्शन लेकर वे घर लौटे। गुरु के आदेशानुसार उन्होंने शादी कर गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए सपत्नीक भगवद्भक्ति करते हुए आस-पास के गाँवों में भी गायत्री मंत्र का प्रचार किया।

वे दोनों पति-पत्नी ब्राह्ममुहूर्त में उठकर स्नान आदि से निवृत्त होकर गायत्री मंत्रजप के साथ गायत्री यज्ञ भी करने लगे। जप करते हुए संत माधवदास माँ गायत्री की दिव्य मनोहर छवि का ध्यान करने लगे।

सायंकाल में भी भगवद्ध्यान करते और गायत्री ध्यान करते हुए योगनिद्रा में सो जाते। नित्य भगवद्ध्यान के प्रभाव से वे गहन ध्यान व समाधि में डूब जाते।

भगवद्ध्यान में मानो उनका ब्रह्मजगत् से संबंधविच्छेद-सा हो जाता और उनकी आत्मा ब्रह्म का चिंतन करते-करते ब्रह्म में समाहित हो जाया करती। उनकी चित्तवृत्तियों के ब्रह्म में लीन हो जाने के कारण उनका बाह्यज्ञान लुप्त-सा हो जाता।

उस अवस्था में उन्हें ऐसा महसूस होता कि माँ गायत्री प्रकाशरूप में उनकी हृदय गुफा में प्रकट हो चुकी हैं एवं उस समय उन्हें हृदय में अलौकिक आनंद की अनुभूति होती। हर पल उसी ब्रह्म-भावदशा में रहते हुए ही वे अपने सांसारिक कर्त्तव्य-कर्म का निर्वाह करते। एक पल के लिए भी वे ब्रह्मचिंतन से विमुख नहीं होते।

रात्रि में सोते हुए भी वे ब्रह्मचिंतन करते हुए योगनिद्रा में चले जाते। निद्रा में उन्हें अक्सर दिव्य स्वप्न आते और नित्य भगवान के दर्शन होते। एक बार जब स्वप्न में माँ गायत्री उनके समक्ष प्रकट हुईं तो माधवदास गद्गद हो गए। माँ गायत्री

बोलीं—''हे माधव! मैं तुम्हारी भक्ति से बहुत प्रसन्न हूँ, अत: तुम मुझसे कोई वर माँगो।''

माँ आगे बोलीं—''तुम्हारी तरह जो निर्मल मन से मेरी भक्ति करते हैं, जो तुम्हारी तरह प्राणिमात्र के प्रति दया करने वाले और सर्वत्र समदृष्टि रखने वाले हैं, वो मुझे अतिशय प्रिय हैं। जो तुम्हारी तरह चित्त को एकाग्र करके तप, स्वाध्याय, संयम आदि का पालन करते हुए अपनी आत्मा में नित्य मुझ परमेश्वर का ध्यान करते हैं, उन्हें मेरी प्राप्ति अवश्य होती है।'' माधवदास ने गायत्री माता से प्रार्थना के भाव में कहा—''माँ! आपके दर्शन मात्र से मेरी व्यथा दूर हो गई है और आनंद से मुझे रोमांच हो रहा है। मैं तो आपके दर्शन मात्र से कृतार्थ हो गया, फिर आपसे यही प्रार्थना है कि मेरी आपमें अनन्य भक्ति हो।''

गायत्री माता बोलीं—''वत्स! तुम्हारी यह अभिलाषा पूर्ण हो।'' इतना कहते ही गायत्री माता अंतर्धान हो गईं और माधवदास की निद्रा खुल गई। उन्हें आनंद से अभी भी रोमांच हो रहा था और वे बार-बार गायत्री माँ का धन्यवाद कर रहे थे।

अंत में अपने पुत्र को घर की जिम्मेदारी सौंपकर वे पूर्णरूपेण भगवद्भक्ति में लग गए और इस प्रकार अपने जीवन को सफल कर गए। सचमुच भगवन्मय जीवन में ही वास्तविक आनंद है और इसी में मानव जीवन की पूर्णता, सार्थकता और सफलता भी है।

अस्तु हमारा जीवन भी भगवन्मय ही होना चाहिए। सचमुच भगवन्मय जीवन में ही जीवन की पूर्णता निहित है। ❑

सन् 1875 में मुंबई में जर्मनी से हर्मिस्टन नामक सर्कस कंपनी का प्रदर्शन धोबी तालाब के मैदान पर रखा गया। भारत में उससे पूर्व सर्कस का नाम कोई जानता ही न था।

सर्कस समाप्त होने पर सर्कस का मालिक दर्शकों से मुखातिब होते हुए बोला—''ऐसा उत्कृष्ट प्रदर्शन मात्र यूरोपीय ही कर सकते हैं, हिंदुस्तानियों के बस की यह बात नहीं।''

उसके ये शब्द दर्शकदीर्घा में बैठे प्रोफेसर छत्रे के हृदय में तीर की तरह लगे। उन्होंने प्रण किया कि वे शीघ्र ही भारतीय सर्कस कंपनी प्रारंभ करके दिखाएँगे।

अपनी प्राध्यापक की नौकरी से त्यागपत्र देकर वे सांगली महाराज व महाराज वाडकर का सहयोग लेकर इस कार्य हेतु लग गए। अपना प्रण पूर्ण करते हुए उन्होंने विजयादशमी, 1878 के दिन 'प्रो. छत्रे ग्रैण्ड सर्कस' के नाम से भारत की पहली सर्कस कंपनी आरंभ की व भारतीय स्वाभिमान की रक्षा की।

तपस्या

दीपक का कार्य अंधकार को पराजित कर प्रकाशित वातावरण का निर्माण करना होता है। तपस्वियों का जीवन उद्देश्य भी कुछ ऐसा ही होता है। वे न केवल अपने जीवन को प्रकाशित बनाए रखने के दायित्व का निर्वहन करते हैं, वरन अपने प्रभाव-क्षेत्र में इसको भी सुनिश्चित करते हैं कि व्यक्ति सत्य से परिचित रहे और भटकने न पाए।

देखा जाए यदि इतना सुनिश्चित हो जाए तो समाज की आधी से ज्यादा समस्याओं का समाधान निकल आता है। अपने कुकर्मों से व्यक्ति को जितना नुकसान होता है, उससे कई गुना ज्यादा नुकसान पथ भटक जाने एवं गलत को सही मान लेने से होता है।

जिस तरह दीपक का प्रकाश तमिस्रा का हरण करके प्रकाशित पथ को संभव बनाता है—उसी तरह तपस्वी, वातावरण के अंधकार को परास्त कर मानवता के लिए आलोकित मार्ग का निर्माण करते हैं।

युगसंधि की इन विषम वेलाओं में तपस्वियों के कंधों पर ही महती दायित्व है। उन्हें अँधेरी रातों में प्रकाशस्तंभों की तरह अकेले ही जलना होता है। समुद्री किनारों पर उपस्थित प्रकाशस्तंभों को भला कौन सहयोग प्रदान करता है? उसकी सहायता भला कौन करता है?

वो तो अकेला ही समुद्री लहरों में टकराते हुए अनेकों की सेवा करता है, भटके हुए जहाजों को राहें दिखाता है और विपत्तियों में पड़े राहगीरों के लिए पथ-प्रदर्शक सिद्ध होता है। जिस तरह से अँधेरी निशा में प्रकाशस्तंभ की मूकसेवा अनवरत चलती है—वैसे ही लोक-कल्याण के लिए तपस्वियों को तिल-तिल करके जलना होता है।

आज की परिस्थितियों में तपस्वियों का ऐसा ही मूक योगदान वर्तमान समय माँगता है। अंधकार का अंत होता ही तब है, जब प्रकाश का उदय होता है। जिनके अंदर तपस्या की, तितिक्षा की भावना हो—उन्हें आज की परिस्थितियों में इसी भाँति सोचने की आवश्यकता है।

वर्तमान में बढ़ चले प्रचलन व प्रवाह की दिशा को मोड़ने के लिए भागीरथी दुस्साहस की आवश्यकता आन पड़ी है। इससे कम में आज की परिस्थितियों का परिवर्तन संभव नहीं। जिनके अंतरंग व अंतरात्मा में सदाशयता व तपस्या की उमंगें उठती हों—उन्हें पूर्ण विश्वास से आगे बढ़ने व तापसिक पुरुषार्थ करने की जरूरत है। ❑

इन दिनों स्त्रष्टा की अदम्य और प्रचंड अभिलाषा एक ही है कि सड़ी दुनिया को बदलने में, उसके लिए कायाकल्प जैसा नया सुयोग बनाया जाए। यही है—इक्कीसवीं सदी बनाम उज्ज्वल भविष्य। यही है—मनुष्य में देवत्व का उदय और प्रतिभा परिष्कार का महाअभियान। इसी को लोग विचार क्रांति की लाल मशाल का प्रज्वलन भी कहते हैं।

—परमपूज्य गुरुदेव

निष्काम भक्ति से होती है भगवत्प्राप्ति

जन-जन में, कण-कण में, अणु-अणु में निराकार ब्रह्म को देखना; मन, वाणी और कर्म से किसी को दु:ख न पहुँचाना और जनता-जनार्दन की सेवा करना, यही भक्तिमार्ग का अंतिम ध्येय है, पर निष्काम भक्ति के माध्यम से ही कोई भक्त यह स्थिति प्राप्त कर पाता है। जब वह स्वयं को पूर्णत: प्रभु को अर्पित कर देता है और भगवान के सिवा वह कुछ भी नहीं चाहता तब अंतत: उसे अपनी आत्मा में सर्वव्यापी परमात्मा की अनुभूति सत्-चित्-आनंद के रूप में होने लगती है और आत्मा में परमात्मा की अनुभूति होते ही उसे सृष्टि के कण-कण में परमात्मा के होने की अनुभूति होने लगती है।

वह हर जीव में परमात्मा को निहारने लगता है और ऐसी आत्मदृष्टि पाते ही उसका जीवनव्यवहार, लोकव्यवहार बदल जाता है। वह 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' को अपने आचरण से, व्यवहार से हर पल चरितार्थ करता है। संत तुकाराम की भगवद्भक्ति भी उसी स्तर की थी।

वे नित्य मंदिर में विट्ठल भगवान की पूजा करते, ध्यान करते और कीर्तन किया करते थे। वे दिन-रात श्री विट्ठल भगवान का ध्यान करते और यह प्रार्थना भी करते कि हे प्रभु! मुझे कोई सद्गुरु मिल जाएँ, जिनके उपदेश को पाकर मैं कृतार्थ हो जाऊँ। वे घर में, घर के बाहर, मंदिर में, नदी तट पर, पहाड़ों पर बैठकर भगवान के सगुण रूप का ध्यान किया करते।

कहते हैं एक बार माघ शुक्ल दशमी गुरुवार की रात में वे भजन कर रहे थे कि उनकी आँखें झपकीं और उन्होंने एक दिव्य दृश्य देखा कि वे इंद्रायणी पर स्नान को जा रहे हैं कि तभी राह में ही उन्हें एक महात्मा का दर्शन हुआ। तुकाराम जी ने उन महात्मा के पैर पकड़ लिए और उन महात्मा ने उन्हें हाथ पकड़कर उठाया। बड़े प्रेमभाव के साथ तुकाराम जी की पीठ पर हाथ फेरा और आशीर्वाद देते हुए कहा कि तुम चिंता न करो। मैं तुम्हारा भाव पहचान गया हूँ।

फिर उन महात्मा ने उनके सिर पर हाथ रखा और उनके कान में 'राम कृष्ण हरि' मंत्र का उपदेश किया। उन महात्मा का दर्शन, स्पर्शन, संभाषण और उपदेश पाकर श्री तुकाराम जी बड़े आनंदित हुए और उसी आनंद में 'राम कृष्ण हरि, राम कृष्ण हरि' जोर-जोर से कहने लगे कि तभी उनकी आँखें खुल गईं।

उन्होंने देखा कि उनके मुख से 'राम कृष्ण हरि, राम कृष्ण हरि' शब्द निकल रहे हैं, तब उन्हें यह निश्चय हो गया कि उन्हें निद्रा में ही गुरूपदेश का साक्षात्कार हुआ है। वास्तव में जब ईश्वर के प्रति अटूट श्रद्धा हो, विश्वास हो, भक्ति हो तभी भक्त को स्वप्न में ऐसे दिव्य दर्शन प्राप्त होते हैं। अस्तु ऐसे स्वप्न साधारण नहीं, असाधारण होते हैं।

स्वप्न में ऐसे दिव्य साक्षात्कार होने पर भक्त को विश्वास हो जाता है कि भगवान उसकी सहायता कर रहे हैं, भगवान उसकी प्रार्थना सुन रहे हैं, और

फलस्वरूप उसकी भक्ति और भी गहरी एवं प्रगाढ़ होती जाती है, दृढ़ से दृढ़तर होती जाती है। संत तुकाराम के साथ भी यही हुआ। स्वप्न में सद्गुरु से प्राप्त 'राम कृष्ण हरि' मंत्र का उन्होंने नियमपूर्वक जप आरंभ किया और उन्हें यह भरोसा हुआ कि उन्हें भगवद्दर्शन अवश्य होगा।

भगवान के प्रति जब तक ऐसा विश्वास और भरोसा न हो, तब तक भगवान के प्रति प्रीति नहीं बढ़ती, प्रीति प्रगाढ़ नहीं होती, गहरी नहीं होती। चित्त में जब तक भगवान को पाने की तीव्र उत्कंठा न हो, जीव जब तक भगवान के लिए जल-बिन मछली की भाँति तड़पे नहीं—तब तक चित्त की पूर्ण एकाग्रता नहीं होती और चित्त की पूर्ण एकाग्रता के बिना साक्षात्कार भी नहीं होता।

पूर्ण एकाग्र होने पर ही चित्त प्रभु के ध्यान में डूबता है, उतरता है, मिटता है तब जाकर आत्म-साक्षात्कार होता है, प्रभु का साक्षात्कार होता है, ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। कुछ दिन के बाद तुकाराम जी का भी यही हाल हुआ। भगवान के प्रति उनकी प्रीति पूर्णिमा के चाँद की भाँति बढ़ती गई। वे भगवद्ध्यान में डूबे रहने लगे।

वे कभी अपने मन से पूछते तो कभी संतों से पूछते—"हे सज्जनो! हे संतो! क्या मेरा भी उद्धार हो सकेगा? क्या नारायण मुझ पर कृपा करेंगे? क्या मेरे पास ऐसा पुण्य है, जिसके प्रभाव से मैं भगवान के चरण गहूँ, वे मेरी पीठ पर प्यार से हाथ फेरें और भगवान का यह प्रेमभाव देख मेरा गला भर आवे?"

"चारों पहर बस मुझे यह चिंता है कि प्रभु मुझे कब दर्शन देंगे और दर्शन देंगे भी या नहीं? बस, दिन-रात मेरे दिल को यही बात सताती है।" ऐसा बोलकर निर्मल, निश्छल, निर्दोष, निर्विकार, तुकाराम भगवान के वियोग में फूट-फूटकर रो पड़ते। भक्त की ऐसी भक्ति, ऐसी साधना, ऐसी निश्छलता, ऐसी निर्मलता और ऐसी निरभिमानता हो तो फिर भला भगवान क्यों न आएँगे? क्यों न दर्शन देंगे, ऐसे भक्त को, ऐसे साधक को? उसी भावदशा में डूबे हुए तुकाराम को आखिरकार एक रात्रि को दूसरा साक्षात्कार हुआ।

संत तुकाराम सो रहे थे कि संत नामदेव श्री विट्ठल भगवान को लेकर आए और उन्हें जगाकर बोले—'आज से व्यर्थ न बोलो। अभंग (भगवद्स्तुति, भगवद्गान) रचने लगो।" संत तुकाराम ने दिव्य प्रकाश के रूप में प्रकट हुए संत नामदेव जी एवं विट्ठल भगवान के चरण पकड़ लिए। दोनों ने उनकी पीठ पर प्रेम से हाथ फेरे और दोनों अंतर्धान हो गए।

भगवान का साक्षात् दर्शन पाकर संत तुकाराम को परमानंद की अनुभूति हुई। उनकी साधना सफल हुई। आज उन्हें साक्षात् श्री विट्ठल भगवान का दर्शन हुआ। उनकी अभंग रचना का कार्य आरंभ हुआ। वे सदा भगवद्भजन एवं भगवान का सुमिरन करने लगे।

एक दिन नदी किनारे भजन, ध्यान करते हुए भगवान का प्रत्यक्ष दर्शन पाने को वे व्यग्र हो उठे और कहने लगे—"हे प्रभु! तुकाराम के लिए इस दुनिया में, स्वर्ग में, तेरे सिवाय कुछ भी नहीं।" वास्तव में भगवान तो भक्त के हृदय में ही बसते हैं। उन्हें देखने के लिए कहीं दूर नहीं जाना पड़ता। बस, उनके लिए दिल में सच्ची तड़प होनी चाहिए, दिल से आकुल पुकार उठनी चाहिए। उसी से भक्त को अपने हृदय में ही आत्मस्वरूप भगवान की अनुभूति होने लगती है।

उसी आकुलता में तुकाराम 'राम कृष्ण हरि, राम कृष्ण हरि' गाते हुए भगवदानुभूति पा रहे थे और कह रहे थे—"हे प्रभो! यह चित्त तो आपके स्वरूप में आसक्त हो आपके पैरों से जा लिपटा है। आपका सुंदर मुख देखते ही आत्मा आह्लादित हो उठी है। सब इंद्रियाँ जो कभी इधर-उधर घूमते हुए, भागते हुए दुःखी हो रही थीं, वे भी अब आपके सान्निध्य से पूर्णतया आराम पा चुकीं।" उसी भावदशा में संत तुकाराम को परमात्मा बाल कृष्ण के रूप में दिखाई देने लगे और फिर उन्हीं के हृदय में अंतर्धान हो गए।

इस प्रकार आजीवन ब्राह्मी भावदशा में ब्रह्मानुभूति, भगवदानुभूति करते हुए तुकाराम भागवत धर्म का प्रचार करते रहे, लोगों को अपने अभंग और कीर्तन से भगवन्मार्ग पर चलने को प्रेरित करते रहे। सचमुच भक्ति सच्ची हो, साधना सच्ची हो तो साधक, भक्त निहाल होकर रहता है। वह भगवान को पा ही लेता है, परमानंद को पा ही लेता है। ❑

एक राजा ऋषि अथर्वण के पास परमात्मतत्त्व की प्राप्ति का साधन जानने पहुँचा। ऋषि बोले—"जो कुछ तुम्हारे पास है, सब छोड़ दो। परमात्मा मिल जाएँगे।" राजा को लगा कि यह मार्ग तो अत्यंत सरल है सो वे अपना राज-पाट छोड़कर ऋषि के पास आ गए।

ऋषि उन्हें देखकर बोले—"अरे! तुम आ गए, पर सब छोड़कर नहीं आए।" ऋषि अथर्वण की बात सुनकर राजा आश्चर्यचकित हुए, उन्हें लगा कि वे राज-पाट छोड़कर आ गए हैं तो अब और क्या छोड़ना शेष रह गया है? ऋषि ने उन्हें कोई उत्तर न देते हुए आश्रम की गंदगी साफ करने का कार्य दिया। राजा को यह कार्य अपनी प्रतिष्ठा से हेय तो लगा, पर वे तब भी यह कार्य करने लगे।

कुछ दिन बीते तो राजा सफाई करते हुए ऋषि के समक्ष पहुँचे तो ऋषि ने उन्हें ढंग से सफाई करने का निर्देश दिया। राजा का सुप्त राजसी अहंकार जाग उठा और वे क्रोध में सब कुछ वहीं छोड़कर चले गए। एक सप्ताह बाद यह घटना फिर से घटी।

इस बार राजा वहाँ से गए तो नहीं, पर उनकी भाव-भंगिमा में क्रोध आ गया। ऋषि ने इस बार भी उनका कार्य नहीं बदला। कुछ माह पश्चात सफाई करते समय ऋषि अथर्वण ने उन्हें टोका तो इस बार राजा विनम्र भाव से वह स्थान साफ करने लगे, जिसे साफ करने का निर्देश ऋषि ने दिया था।

अब ऋषि बोले—"राजन्! आज तुम ज्ञानप्राप्ति के अधिकारी हो गए हो। पहले तुम संपत्ति—संपदा छोड़कर आए थे पर अपना 'मैं' छोड़कर नहीं आए थे। अहंकार ही प्रभुप्राप्ति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है।" राजा को परमात्मतत्त्व की प्राप्ति का सर्वोच्च साधन मिल गया था।

एकाग्रता की शक्ति का अर्जन करते रहें

एकाग्रता की शक्ति सर्वोपरि है। मन जब एक बिंदु पर एकाग्र हो जाता है, तो चमत्कार घटित होते हैं। विद्यार्थी जीवन हो या नौकरी-व्यापार, समाजसेवा हो या धर्म-अध्यात्म का क्षेत्र— एकाग्रता की शक्ति ही व्यक्ति को सफल बनाती है, यही निर्धारित क्षेत्र में सिद्धि की कुंजी है।

मन की शक्तियाँ सूर्य की रश्मियों की भाँति होती हैं, जो सामान्यतया बिखरी रहती हैं व इनके साथ दैनिक जीवन के सामान्य क्रियाकलाप चलते रहते हैं, लेकिन जब इन्हीं किरणों को आतिशी शीशे से गुजारा जाता है तो ये ही बिखरी किरणें एक बिंदु पर एकाग्र होकर अपना चमत्कार दिखाती हैं। इनके संपर्क में जो भी कागज, लकड़ी आदि के टुकड़े आते हैं, वे प्रज्वलित होकर अग्निमय हो जाते हैं। सूर्यकिरणों की इस प्रचंड शक्ति का रहस्य इनकी एकाग्रता में ही छिपा हुआ रहता है।

इसी तरह व्यक्ति के जीवन में मन की एकाग्रता उसे संबंधित क्षेत्र में उत्कर्ष के शिखर तक ले जाती है, लेकिन अधिकांश लोग उसका पूरा लाभ नहीं ले पाते। उनके मन की शक्तियाँ बिखरी रहती हैं। इस बिखराव के कई कारण हो सकते हैं, जिनमें मोटेतौर पर मुख्य कारण रहते हैं—ध्येय-निष्ठा का अभाव, पर्याप्त नींद न ले पाना, शारीरिक सक्रियता का अभाव, आहार-विहार संबंधी व्यतिक्रम और प्रतिकूल वातावरण।

सूचना विस्फोट के युग में आजकल सूचनाओं का अंबार मन को उलझाए रखता है, मोबाइल फोन हर पल मन की एकाग्रता को भंग करने के लिए जैसे तत्पर रहता है। इसके बाद अधूरी नींद एकाग्रता के अभाव का एक बड़ा कारण है, जिसके कारण मन अन्यमनस्क एवं बिखरा-सा रहता है, पूरी तरह से एकाग्र नहीं हो पाता।

पर्याप्त शारीरिक सक्रियता का अभाव भी मन पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, शरीर में कई तरह की परेशानियाँ उभरना प्रारंभ हो जाती हैं, जो मन को स्थिर व एकाग्र नहीं होने देतीं। पौष्टिक एवं सात्त्विक आहार के अभाव में मन को उचित पोषण नहीं मिल पाता, साथ ही तामसिक एवं राजसिक आहार मन को चंचल व जड़ बनाए रखते हैं, ऐसे में एकाग्रता कठिन हो जाती है।

इनके साथ वातावरण में विद्यमान ध्वनि से लेकर वायु प्रदूषण जैसे कारक एकाग्रता के लिए चुनौती बने रहते हैं और अंततः बिगड़ी दिनचर्या एवं अनुशासनहीनता, मन की अस्थिरता एक अहम कारण रहती है। अतः मन को एकाग्र करने के लिए सर्वप्रथम मन की एकाग्रता को भंग करने वाले कारकों को एक-एक करके कम करने का प्रयास करें।

उदाहरणतया, कार्य के समय अपने मोबाइल फोन को नजरों से दूर ही रखें। शोध के आधार पर स्पष्ट हो चुका है कि जब मोबाइल नजरों से दूर रहता है, तो एकाग्रता बेहतर होती है। अतः गंभीर कार्य के समय इसे किसी दूसरे कमरे में या बैग में या फ्लाइट मोड में रखें। आप अनावश्यक व्यवधानों से बचे रहेंगे व एकाग्र होकर कार्य कर पाएँगे। फिर कार्य पूरा होने पर एक निर्धारित समय में मोबाइल को चैक कर सकते हैं व इससे जुड़े आवश्यक कार्यों को निपटा सकते हैं।

इसके साथ एक समय कई काम करने की आदत पर अंकुश लगाएँ। जितने कार्य एक साथ हाथ में लेने का प्रयास करेंगे, मन की एकाग्रता उतने हिस्सों में बँटी रहेगी तथा ऐसे में कोई भी कार्य पूरी तरह से नहीं हो पाएगा। अत: एक समय में एक कार्य हाथ में लें, उसे पूर्ण एकाग्रता के साथ निपटाते हुए आगे बढ़ें। ऐसे में कार्यक्षमता बढ़ी-चढ़ी रहेगी तथा सफलता की दर भी अधिक होगी।

वर्तमान में जीने का प्रयास करें। जो बीत गया, उसमें उलझे रहने का कोई लाभ नहीं होता, इसी तरह भविष्य के बारे में चिंता से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। जब मन भूत में अटका रहता है या भविष्य की चिंता में डूबा रहता है, तो एकाग्रता कठिन हो जाती है। अत: वर्तमान में अपने कर्त्तव्य-कर्म पर ध्यान को एकाग्र रखें।

कार्यों के बीच में छोटे-छोटे ब्रेक लें। थोड़ा टहलकर आएँ या मौसम के हिसाब से जल-पेय ग्रहण करें या कुछ पल मन को खाली रखने का अभ्यास करें। रुचि के नए कार्य करने से भी मन की जड़ता टूटती है व एक नई ताजगी के साथ कार्य करना संभव होता है।

यथासंभव प्रकृति के साथ विचरण करें। शोध से सिद्ध हो चुका है कि मन जितना प्रकृति की गोद में रहता है, वह उतना ही स्वाभाविक रूप से तरोताजा व एकाग्र रहता है। अपनी मेज, कक्ष या घर के आस-पास हरे-भरे पौधे लगाएँ, बीच-बीच में इनके दर्शन करें, जो मन को शीतलता के साथ शांति का एहसास देंगे व मन को एकाग्र करने में सहायक होंगे। इसके साथ पर्याप्त नींद लें, समय पर सोने व जागने का अभ्यास करें। शयन कक्ष से मोबाइल को दूर ही रखें, जो सोने व जागने के क्रम को बिगाड़ने का अहम कारण रहता है। शारीरिक रूप से सक्रिय रहें। अपनी अवस्था के अनुरूप व्यायाम से लेकर प्रात:-सायं टहलने की व्यवस्था करें।

बेहतरीन संगीत सुनें, जो मन को एकाग्र करने में सहायक रहता है। इसके साथ अपनी प्राथमिकता को स्पष्ट रखें। छोटे-छोटे कार्यों को सफलतापूर्वक अंजाम देते जाएँ, इससे कार्य का उत्साह बना रहेगा, एक आशाभरी मन:स्थिति के साथ चित्त एकाग्र होगा व सतत मंजिल की ओर बढ़ रहा होगा। इन सबके साथ मन की एकाग्रता में कार्य की रुचि के महत्त्व को भी समझें। वास्तव में कार्य में रुचि मन की एकाग्रता का अहम कारक रहता है। जिस कार्य में व्यक्ति की रुचि होती है, उसमें स्वाभाविक रूप से व्यक्ति का मन लगता है, एकाग्रता सधती है। जबकि पढ़ाई-लिखाई से जुड़े आवश्यक विषय के प्रति रुचि के अभाव में विद्यार्थी टालमटोल करते देखे जाते हैं।

इसी तरह कार्य की उपयोगिता की समझ भी एकाग्रता की शक्ति को जन्म देती है। जब किसी कार्य का लौकिक या पारलौकिक लाभ स्पष्ट होता है, तो लोगों को इसके निमित्त एकाग्र होकर प्रयास-पुरुषार्थ करते देखा जाता है। इन सबके साथ नित्य ध्यान का अभ्यास करें, जो मन को एकाग्र करने का एक अचूक उपाय है। यह अनुशासित जीवन के आधार पर संभव होता है। संयमित आहार-विहार, पर्याप्त नींद-विश्राम के साथ वाणी व्यवहार के अनुशासन का अनुसरण करें। लक्ष्यकेंद्रित जीवन जिएँ व एकाग्रता के महत्त्व एवं शक्ति को समझें। इसके अर्जन के लिए नित्य सचेष्ट प्रयास करते रहें।

स्वामी विवेकानंद के शब्दों में एकाग्रता ज्ञान की कुंजी है। एकाग्रता के प्रहार से प्रकृति अपने रहस्य उजागर करती है। जीवन की पहेली को सुलझाने की शक्ति एकाग्रता में ही है। यदि मुझे पुन: नए सिरे से शिक्षा प्राप्त करनी होती, तो मैं सबसे पहले एकाग्रता की शक्ति का अर्जन करूँगा और फिर तथ्य मेरी इच्छा पर मुट्ठी में होंगे। इस तरह ज्ञान की कुंजी के रूप में एकाग्रता की शक्ति को समझें, इसके अर्जन में किए गए किसी भी प्रयास को हलका न आँकें व इसका सतत अभ्यास करते रहें। ❑

ऐसे जुड़ें परमात्मा से

दु:ख पाने पर मनुष्य दु:खी अवश्य होता है, पर दु:ख में एक भारी गुण भी है। वह यह है कि दु:ख, भौतिक सुख की, सांसारिक सुख की निस्सारता दिखाता है। जिस सुख के लिए मनुष्य का मन तड़पता है, छटपटाता है और जिसे पाने के लिए वह बड़े-से-बड़े प्रयास, पुरुषार्थ और परिश्रम करता है और उसे पाकर भी जब वह पूर्णत: तृप्त नहीं हो पाता, सदा के लिए सुखी नहीं हो पाता तो वह दु:खी होता है और फिर से सुखी होने के लिए भौतिक सुख-साधनों, विषय-भोगों के पीछे भागता है।

ऐसा वह बार-बार करता है और इस आशा में करता है कि शायद इस बार सांसारिक सुख, विषय सुख पाकर वह सदा के लिए सुखी हो सकेगा, तृप्त हो सकेगा, पर उसकी इंद्रियाँ क्षणिक सुख पाकर फिर से अतृप्त हो जाती हैं। इससे सांसारिक सुख की, इंद्रियजन्य सुख की निस्सारता, क्षणभंगुरता और अपूर्णता उसके सम्मुख आती है और फलस्वरूप सांसारिक सुखों, इंद्रियजन्य सुखों के प्रति उसकी आसक्ति को कुछ चोट तो अवश्य पहुँचती है।

उसके मन में क्षणिक वैराग्य का उदय तो अवश्य होता है। विषयों के प्रति उसके मन में क्षणिक विरक्ति तो अवश्य ही उत्पन्न होती है। वह क्षणिक विरक्ति हरेक मनुष्य के जीवन में एक-न-एक समय अवश्य उत्पन्न होती है, पर दु:ख की बात तो यह है कि यह विरक्ति स्थायी नहीं हो पाती। यह क्षणिक काल के लिए ही होती है। इसलिए तो मनुष्य का मन फिर से उन्हीं विषय-भोगों के लिए मचलता है, तड़पता है।

खुली आँखों से भी मनुष्य वह नहीं देख रहा होता जो उसके सामने है; बल्कि वह वही देख रहा होता है, जो उसके मन की आँखें उसे दिखा रही होती हैं। वह आँखें मूँदे बैठा हो या फिर खोलकर, वह मन की आँखों से उन्हीं विषयों की कल्पना करता है, याचना करता है, लालसा करता है और देखता है।

इस प्रकार उसके मन में क्षणिक समय के लिए विरक्ति आती है और अगले ही क्षण चली जाती है। मन में विषयों के प्रति क्षणिक वैराग्य उपजता है और अगले ही पल चला जाता है। जिस दौलत को, धन-संपदा को पाने के लिए व्यक्ति जीवन भर लगा रहा, अंत में उन्हें छोड़कर उसे इस दुनिया से खाली हाथ ही जाना पड़ता है। यह सब हम अपनी आँखों से देखते हैं और दु:खी होते हैं और यह सोचते भी हैं कि देखो इस दुनिया की सारी दौलत छोड़कर ही हमें एक दिन जाना होगा।

अपने घर में, परिवार में, समाज में लोगों को मरते हुए देखकर भी हमें दु:ख होता है और उसके साथ ही हममें क्षणिक वैराग्य आता है; क्योंकि उन्हें मरते देखकर हमें शरीर की नश्वरता, क्षणभंगुरता समझ में आती है।

श्मशान में बैठकर हम मरे हुए लोगों को जलते हुए देखते हैं, भस्मीभूत होते हुए देखते हैं और जीवन की निस्सारता, क्षणभंगुरता हमारी आँखों के सामने आती है और हममें वैराग्य जागता है, विरक्ति आती है, पर अगले ही पल जब हम श्मशान से घर लौट आते हैं और सांसारिक क्रियाकलाप में

लग जाते हैं तो फिर से वह वैराग्य, मन से अदृश्य होने लगता है।

वह विरक्ति अदृश्य होने लगती है। दु:ख की यही बात है कि यह विरक्ति हममें बसती नहीं, टिकती नहीं, बल्कि चली जाती है। पर जिस दिन, जिस पल से यह विरक्ति हमारे मन में सदैव के लिए बस गई, उतर गई, टिक गई, रुक गई, ठहर गई; उसी क्षण हम भी टिक जाएँगे, रुक जाएँगे, ठहर जाएँगे। हर पल संसार में हो रही हमारी दौड़ रुक जाएगी, ठहर जाएगी और यह ठहराव ही हमारे आनंद की ओर प्रस्थान करने का आरंभ होगा। हमारे मन की, हमारे चित्त की जो वृत्तियाँ अभी संसार की ओर, भोगों की ओर दौड़ रही हैं वो वृत्तियाँ भी रुक जाएँगी, ठहर जाएँगी।

जिस पल वे स्थायी रूप से रुक गईं, ठहर गईं, उसी पल हमारे भीतर एक असाधारण घटना घट जाएगी; क्योंकि तब क्षणिक, क्षणभंगुर सुख के बजाय, शाश्वत सुख और आनंद का दरिया हमारी आत्मा से ही फूट पड़ेगा और हम हमेशा के लिए आनंद से आप्लावित हो उठेंगे। हम सशरीर रहेंगे तो तब भी इसी संसार में, पर तब संसार हममें न रह सकेगा। संसार हममें न ठहर सकेगा। संसार के सुख-साधन हमें नचा नहीं सकेंगे, लुभा नहीं सकेंगे।

हम संसार में रहेंगे, पर हम संसार के होकर न रह सकेंगे। क्यों? क्योंकि पल-पल हमें संसार में रचाने, बसाने, घुमाने वाला मन ही ठहर चुका होगा। चित्त की वृत्तियाँ ठहर चुकी होंगी, रुक चुकी होंगी; पर मन का, चित्त का रुक जाना, ठहर जाना भी तो आसान नहीं। हाँ! यह कतई आसान नहीं, पर जब साधक अपने हृदय की गुफा में स्थित अपनी आत्मा में नित्य परमात्मा का ध्यान करता जाता है, ब्रह्म का ध्यान करता जाता है और बिना रुके, बिना ठहरे, अविराम दीर्घकाल तक पूर्ण श्रद्धा, भक्ति, विश्वास व संयमपूर्वक जीवन जीते हुए करता है तब चित्त की जो वृत्तियाँ संसार की ओर, विषयों की ओर गतिशील हैं, चलायमान हैं वे आत्मा में निरंतर परमात्मा का ध्यान करते-करते, ब्रह्म का ध्यान करते-करते ब्रह्म में ही विलीन होकर ब्रह्मरूप हो जाती हैं।

ब्रह्म का ध्यान करने वाला चित्त जब ब्रह्म में ही रुक जाता है, ठहर जाता है, मिट जाता है, मिल जाता है और तभी आत्मा में परमानंदरूपी परमात्मा हमेशा-हमेशा के लिए उमगने लगते हैं, उमड़ने लगते हैं और साधक भी सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद से परे होकर हमेशा-हमेशा के लिए आनंदित हो जाता है।

तब विषय-भोगों के बीच होकर भी, बैठकर भी, रहकर भी साधक अभोगी होता है, अकामी होता है; क्योंकि तब वह योगी होता है। यह अवस्था ही जीवात्मा के मोक्ष की अवस्था है, आनंद की अवस्था है। इस अवस्था में न तो वह सुखी होता है, न तो वह दु:खी होता है; क्योंकि वह इन दोनों से परे होता है और इसलिए आनंदित होता है।

माता देवी बिन्दुरूपा नादरूपः शिवः पिता।

अर्थात माता पार्वती ही बिंदु रूप में जगत् की माता हैं और भगवान शिव नादरूप में जगत् के पिता हैं।

अस्तु जो साधक भगवान की शरण में आकर नित्य भगवान का ध्यान करता है; उनके नाम, रूप, लीला, धाम, गुण और प्रभाव आदि का श्रवण, स्मरण, सुमिरन, कीर्तन और मनन करता है; अपने समस्त कर्मों को भगवान को अर्पित करता जाता है और अपने को भगवान के हाथों का एक यंत्र मात्र मानते हुए अपना कर्त्तव्य कर्म करता जाता है—वह अवश्य ही सभी प्रकार के दु:खों से मुक्त होकर परमानंद को प्राप्त कर लेता है। वह परमानंद के स्रोत परमात्मा से हमेशा-हमेशा के लिए जुड़ जाता है। ❑

पूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा-समझा-13

लोकजयी अजातशत्रु

गुरुदेव के मार्गदर्शन और प्रतिपादन से जितना प्रकाश लोगों ने ग्रहण किया है, इससे लाख गुना अधिक लोग उनके देवोपम व्यक्तित्व और रहन-सहन से प्रभावित हुए हैं।

कई लोग विचारों से मतभेद भी रखते थे। अन्य धर्मावलंबी उनकी उपासनापद्धति से सहमत नहीं होते, फिर भी वे इतने प्रभावित रहते कि मतभेद की बात ही प्रगाढ़ आत्मीयता के आदान-प्रदान के बीच एक प्रकार से विस्मरण ही हो जाती थी और बहस करने का प्रयोजन सामने लेकर आने वाले भी उनकी आत्मीयता की सघनता में इतने विभोर हो जाते थे कि बहस के लिए किसी का मुँह ही नहीं खुलता था।

इस प्रकार अपने उन महान गुणों के कारण वे अजातशत्रु और लोकजयी बन सके, जो गुण उन्होंने परिवार की प्रयोगशाला में विकसित किए थे। दूसरे शब्दों में इसी बात को यों भी कहा जा सकता है कि इस प्रयोग-साधना ने विशाल युग निर्माण परिवार के निर्माण का पथ प्रशस्त कर दिया।

घर को तपोवन बनाने के लिए गृहपति को स्वयं तपस्वी बनना पड़ता है। भीतर से और बाहर से जैसा साँचा होगा, वैसे ही सिक्के ढलते चले जाएँगे। दर्पण में वैसी ही आकृति दिखेगी, जैसी कि स्वयं की होगी। परिवार का स्वरूप और वातावरण उत्कृष्ट स्तर का बनाने के लिए अपने को ऐसा बनाया जाना चाहिए, जिसका अनुकरण परिवार के सदस्यगण स्वयं ही करने लगें। आत्मनिर्माण के बिना परिवार का निर्माण नहीं हो सकता।

अनेक परिवार मिलकर समाज बनता है, जैसे परिवार होंगे, वैसा समाज बन जाएगा। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि परिवार का संचालक अपने गुण, कर्म, स्वभाव में, दृष्टिकोण और आचरण में उत्कृष्टता का समावेश करके ही इस योग्य बन सकता है कि सुसंस्कृत एवं समुन्नत परिवार का सृजन कर सके।

गुरुदेव ने परिवार को तपोवन में विकसित करने के लिए जो आत्मसंयम और आत्मनिर्माण की साधना की, उसे हर आत्मवेत्ता के लिए अनुकरणीय ही कहा जा सकता है। इन दिनों न कहीं ऐसे वन-उपवन हैं, जहाँ गुजारे के लिए कंद-मूल-फल पर्याप्त मात्रा में मिल सकें और न कृषि, गोपालन आदि के लिए जगह बची है, जहाँ रहकर स्वावलंबी निर्वाह की व्यवस्था बनाई जा सके।

अब साधु बनकर भिक्षा पर ही निर्भर रहना होता है। इस भिक्षा में कितना पैसा न्यायोपार्जित है, श्रद्धापूर्वक दिया हुआ है; यह जानना कठिन है। अनीति से कमाया हुआ; अश्रद्धा अथवा स्वार्थ कामना से दिया हुआ; प्रत्युपकार किए बिना ग्रहण किया गया भिक्षा धन किसी को हजम नहीं हो सकता, उससे केवल बुद्धि भ्रष्ट ही होगी और आत्मिक प्रगति के स्थान पर अधःपतन का मार्ग ही खुलेगा।

भिक्षा तो एक ऋण है, जिसे चुकाए बिना निस्तार नहीं। जो थोड़ा-बहुत भजन किया जाता है, इसका पुण्य उसके लिए चला जाता है; जिसका अन्न खाकर जीवित रहा गया, फिर आपके हाथ क्या बचा? भजन का पुण्य यदि अन्नदाता ले गया

तो गृहत्यागी तो दोनों ओर से मारा गया, माया मिली न राम। परिवार भी छूटा; तिरस्कार भी सहा; अभावग्रस्त जीवन जिया, इस पर भी भजन का पुण्य न मिला। इस विडंबना से चेले-चेली मूँड़ने के अतिरिक्त और क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ।

इन तथ्यों पर ध्यान देते हुए गुरुदेव स्वयं गृहस्थ में वैरागी की तरह और घर में तपस्वी आत्मोद्धारक की तरह जिए। उन्होंने कमलपत्र की तरह रहकर अपनी जड़ और बेल को कीचड़ में ही नहीं पड़ा रहने दिया, वरन चंदन की तरह इस सारे उपवन को सुगंधित कर दिया, जिसमें वे उगे। मुझ अकिंचन वल्लरी को अपनी ऊँचाई तक अपने से लपेटकर ऊँचा उठा ले जाने का श्रेय मेरे प्रयत्न महत्त्व को नहीं, वरन उन्हीं की महिमामयी गरिमा को है।

वे आरंभ से ही विरक्त हो सकते थे। उनके लिए घर और वन में क्या अंतर हो सकता था, पर तब जनमानस में जमे हुए भ्रम को कैसे निर्मूल किया जा सकता था; जिसके अनुसार आत्मकल्याण और ईश्वरप्राप्ति के लिए गृहत्याग आवश्यक माना जाता है। इसे एक विधि-विचित्रता ही कहना चाहिए कि जिस तथ्य को प्रतिपादन करने में उनका जीवनक्रम अविच्छिन्न रूप से जुड़ा रहा उसी के प्रतिकूल उन्हें इन दिनों वनगमन करना पड़ा, फिर भी उनके प्रयोजन और साधारण वैरागियों के क्रियाकलाप में जमीन-आसमान का अंतर है।

वे युग के अनुरूप आत्मसाधना की विधि-व्यवस्था खोजने गए हैं और उस अन्वेषण में प्रवृत्त हैं, जिसके परिणामस्वरूप इस मार्ग पर चलने वालों में प्रचंड शक्ति उत्पन्न कर सकेंगे।

आज तो अध्यात्म मात्र कथा-कीर्तन, दर्शन-स्नान तक ही सीमित रह गया है और उन रहस्यों का तो एक प्रकार से लोप ही हो गया, जिनके आधार पर व्यक्ति ज्ञानवान ही नहीं, सामर्थ्यवान भी बनता था। जिस शक्ति के बल पर आत्मनियंत्रण और भौतिक परिवर्तन प्रस्तुत किए जा सकते हैं, उस सामर्थ्य को प्राप्त करा सकने वाली साधना पद्धति को सर्वसाधारण के सामने प्रस्तुत किया जा सका तो ब्रह्मविद्या के पुनरुत्थान का एक महान कार्य संपन्न करने में गुरुदेव की तपश्चर्या को श्रेय मिलेगा।

ऐसे महान प्रयोजन के लिए कोई दूसरा साहसी भी अनुकरण कर सकता है। यह एक प्रकार का अपवाद हुआ। ऐसे अपवादों को छोड़कर साधारणतया यही उचित होगा कि घर को तपोवन बनाया जाए न कि तपोवन में घर खड़े करने के उलटे प्रयत्न में लगा जाए। गुरुदेव का उदाहरण इस दृष्टि से सर्वसाधारण के लिए बहुत ही प्रेरणाप्रद सिद्ध हो सकता है। ❑

बाजीगरों और सिद्धपुरुषों के जीवनक्रम में, स्तर में जो मौलिक अंतर रहता है, उसे पहचानना आवश्यक है। साधना से सिद्धि का तात्पर्य उन विशिष्ट कार्यों से है, जो लोक-मंगल से संबंधित होते हैं और इतने बड़े, भारी तथा व्यापक होते हैं, जिन्हें कोई एकाकी संकल्प या प्रयास के बल पर नहीं कर सकता, फिर भी वे उसे करने का दुस्साहस करते हैं, आगे बढ़ने को कदम उठाते हैं और अंततः असंभव लगने वाले कार्य को भी संभव कर दिखाते हैं।

—परमपूज्य गुरुदेव

साधना में सर्वोपरि है समर्पण

साधना में साधक के लिए जो तत्त्व सर्वाधिक और सर्वोपरि महत्त्व का है, वह है समर्पण। साधक का, शिष्य का, भक्त का अपने आराध्य के प्रति समर्पण, इष्ट के प्रति समर्पण, भगवान के प्रति समर्पण, गुरु के प्रति समर्पण।

समर्पण का अर्थ है सर्वस्व अर्पण। साधक, शिष्य, भक्त का अपने आराध्य के प्रति सर्वस्व अर्पण ही समर्पण है। यह समर्पण, यह अर्पण, साधारण नहीं, असाधारण है। क्यों ? क्योंकि ऐसा समर्पण हर कोई नहीं कर पाता।

कोई सच्चा शिष्य, साधक व भक्त ही अपना सर्वस्व अर्पण कर सकता है, समर्पण कर सकता है; क्योंकि समर्पण के पश्चात साधक का, शिष्य का, भक्त का अपना कुछ भी नहीं रह जाता; उसका सब कुछ उसके भगवान का, उसके आराध्य का, उसके गुरु का हो जाता है। यहाँ तक कि साधक स्वयं भी सब प्रकार से भगवान का हो जाता है, आराध्य का हो जाता है, इष्ट का हो जाता है, गुरु का हो जाता है। उसके तन, मन, प्राण, बुद्धि, आत्मा सब पर उसके भगवान का, आराध्य का, इष्ट का, गुरु का आधिपत्य हो जाता है। इसलिए यह समर्पण असाधारण है।

यह महासमर्पण है, महाअर्पण है, महादान है, आत्मदान है, आत्मसमर्पण है। इस समर्पण में साधक में कुछ पाने की नहीं, बल्कि अपना सर्वस्व अपने आराध्य को अर्पण कर देने की उग्रता है, व्यग्रता है, व्याकुलता है, आकुलता है, तड़प है, प्यास है।

परमात्मा के प्रेम में प्रेमोन्मत्त साधक इस समर्पण में अपने अहं, अस्तित्व, मन, बुद्धि, आत्मा आदि सबको परमात्मा के प्रेम में निमज्जित करके परमात्मा में ही खो जाना चाहता है, मिट जाना चाहता है। वह अपना अलग अस्तित्व नहीं चाहता और देखें तो इस समर्पण में सब कुछ खोकर, सब कुछ मिटाकर, स्वयं को खोकर, स्वयं को मिटाकर साधक जो पाता है वह भी साधारण नहीं, असाधारण है।

बीज जब मिट्टी में स्वयं का विसर्जन कर पाता है, समर्पण कर पाता है तभी वह बीज वृक्ष बन पाता है, पर पहले तो उसे बीज के रूप में अपना विसर्जन, समर्पण करने का साहस करना ही होता है। सरिताएँ सागर में जब तक अपना संपूर्ण समर्पण नहीं करतीं, तब तक वे सागर नहीं बन पातीं, वे सरिता ही बनी रहती हैं, पर सागर में अपना विसर्जन करते ही, समर्पण करते ही वे सरिताएँ महासागर बन जाती हैं।

उसी प्रकार साधक जब तक अपना संपूर्ण विसर्जन नहीं करता, तब तक वह अपनी साधना से कुछ लौकिक, पारलौकिक सुख-सुविधाएँ भले ही प्राप्त कर ले, पर जब वह लौकिक-पारलौकिक सुख-सुविधाएँ, ऋद्धि-सिद्धियों की परवाह किए बगैर, हानि-लाभ, आशा-आकांक्षा की परवाह किए बगैर, यहाँ तक स्वयं के अस्तित्व की परवाह किए बगैर ही अपने आप को अपने आराध्य को, इष्ट को, भगवान को, गुरु को, अर्पित कर देता है, तब वह परमात्मचेतना से मिलकर एकाकार हो जाता है।

जब वह संत एकनाथ, सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई, नरसी मेहता, संत रविदास, स्वामी

रामकृष्ण परमहंस, परमपूज्य गुरुदेव जैसे भगवद्भक्तों की तरह अपने आप को पूरी तरह से अपने आराध्य को, इष्ट को, भगवान को, गुरु को समर्पित कर देता है; तब वह पूरी तरह से भगवान का हो जाता है और भगवान उसके हो जाते हैं।

भगवान उसके रोम-रोम से अभिव्यक्त होने लगते हैं। भगवान स्वयं उसकी आँखों से देखने लगते हैं। भगवान उसके पैरों से चलने लगते हैं, उसके हाथों से हर कर्म करने लगते हैं। भगवान उसकी हृदय-गुफा में स्थित आत्मा में उतर आते हैं। तब वो भगवान के यंत्र के रूप में सौभाग्य का पात्र बन जाता है।

इसलिए वह पूरी तरह निर्भार, निर्भीक और निर्द्वंद्व हो जाता है। हर पल भगवान अदृश्य रूप में उसके साथ होते हैं। उसके जीवन की डोर, पतंग की डोर की तरह अब पूर्णत: भगवान के हाथों में होती है। भगवान उसके जीवन की पतंग को स्वयं अपने हाथों से असीमित, असीम आकाश में उड़ाते हैं और वह आनंदित होता जाता है।

जिस पतंग की डोर भगवान के हाथों में है, उसे कटकर नीचे गिरने का कोई भय नहीं होता। भगवान उसके हृदय में सत्य, प्रेम, करुणा, आनंद बन बहने लगते हैं और वह आनंदित होता जाता है। वह हर तरह से निश्चित, निर्भय और निर्द्वंद्व हो जाता है; क्योंकि भगवान को अर्पित साधक का योगक्षेम स्वयं भगवान ही वहन करने लगते हैं।

तभी तो वह नरसी मेहता, संत रविदास, सूरदास, संत नामदेव, संत एकनाथ जैसे भक्तों की व्यक्तिगत व पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वहन करने के लिए विविध प्रकार के वेश धारण कर स्वयं को अभिव्यक्त करते रहे। जीवन की कठिनतम परिस्थितियों में भगवान दृश्य-अदृश्य रूप में, किसी भी वेश में भक्त की सहायता करने प्रकट होते रहे हैं।

यह सब परंतु भक्त के समर्पण पर ही निर्भर करता है। साधक में समर्पण का यह भाव रातोरात उदित नहीं हो जाता। अपनी नियमित भगवद्भक्ति के द्वारा जब उसका चित्त, चिदाकाश स्वच्छ होता जाता है और उसके मन में सत्-चित्-आनंदस्वरूप भगवान के विषय में सम्यक ज्ञान उदित होता जाता है।

सम्यक ज्ञान उदित होने से भगवान के प्रति उसकी प्रीति बढ़ती जाती है, श्रद्धा गहरी और गहरी होती जाती है और वह परमात्मा के प्रेम में उन्मत्त होता जाता है, तब प्रेमोन्मत्तता की उसी भावदशा में वह हानि-लाभ, तर्क-कुतर्क, आशंका, शंका-कुशंका, आशा-आकांक्षा, हानि-लाभ आदि को तिलांजलि देकर स्वयं को पूरी तरह परमात्मा को अर्पित कर देता है, समर्पित कर देता है।

अस्तु सच तो यह है कि समर्पण में, अर्पण में पाया कुछ नहीं जाता, बल्कि सब कुछ छोड़ना पड़ता है और परमात्मसागर में सीधे छलाँग लगाना होता है और जो भी यह साहस, यह महा-समर्पण, महाअर्पण कर पाता है, वह स्वयं भी सागर हो पाता है, महासागर हो जाता है। वह ऊपर से, बाह्यदृष्टि से, स्थूलदृष्टि से तो पूर्ववत् ही दिखता है, पर अंदर से वह असाधारण हो पाता है।

परमात्मा के प्रेम में उसकी काया, मन, प्राण, बुद्धि, आत्मा सभी दिव्य हो जाते हैं, फिर उसके आनंद का क्या कहना? गूँगा गुड़ खा सकता है, पर गुड़ के स्वाद का व्याख्यान नहीं कर सकता। भगवत् प्रेमोन्माद और उससे निस्सृत आनंद से उसके रोम-रोम पुलकित हो उठते हैं। समर्पण में किया कुछ नहीं जाता, बल्कि जो कुछ भी है, उसे छोड़ना पड़ता है। मैं कुछ कर सकता हूँ, मैं ऐसा कर सकता हूँ, मैं वैसा कर सकता हूँ—ये सभी विचार, भाव भी छोड़ने पड़ते हैं।

अपना अहं, अस्तित्व सब कुछ छोड़ना पड़ता है। अपनी निज इच्छाएँ, कामनाएँ, याचनाएँ, आशंकाएँ सब अनायास ही समर्पित साधक के मन से झरने लगती हैं। फिर उसके मन में, प्राण में, बुद्धि में, आत्मा में परमात्मा ताजी सुगंधित पवन की तरह बहने लगते हैं, महकने लगते हैं। उसके हृदय में, आत्मा में परमात्मा का मधुर गीत गूँजने लगता है।

वह परमात्मा के अधरों पर बाँसुरी बन बैठा होता है और परमात्मा उस बाँसुरी में नित्य मधुर गीतों के स्वर भरते रहते हैं। उस गीत से, संगीत से साधक का मन-मयूर नाच उठता है। वह परमात्मा के दिव्य स्वरूप का ध्यान करता हुआ आत्म-विभोर, आत्म-आह्लादित हुआ जाता है।

भला ऐसे समर्पित साधक के सौभाग्य की सराहना शब्दों में कैसे की जा सकती है ? प्रभु को समर्पित साधक के समक्ष सारी विपरीत परिस्थितियाँ भी उसके अनुकूल होती जाती हैं। प्रकृति भी उसकी सहचर और सहयोगी बन जाती है।

प्रह्लाद के समक्ष कठिन-से-कठिन परिस्थितियाँ आईं, पर वे सभी उसके समर्पण के प्रभाव से और प्रभुकृपा से बे-असर होती गईं। प्रह्लाद को मारने के लिए उसे पर्वत से नीचे फेंका गया, हाथी से कुचलवाया गया, उसे विष पिलाया गया, उसे अग्नि के बीच रखा गया, पर उसके समर्पण की शक्ति के समक्ष उसे मार डालने के सारे प्रयास निष्फल ही साबित हुए।

कहाँ हैं तुम्हारे भगवान ? हिरण्यकशिपु के ऐसा कहने पर प्रह्लाद ने कहा—"पिताजी! भगवान कहाँ नहीं हैं। मुझमें, आपमें और खड़े खंभे में, सब में हैं भगवान! भगवान सर्वत्र हैं।" और तभी भगवान श्रीमन्नारायण खड़े खंभ से नृसिंह रूप धारण कर प्रकट हो गए। यदि साधक का समर्पण इस स्तर का हो, तो फिर साधक के लिए, भक्त के लिए प्रभु क्या कुछ नहीं करते।

अस्तु समर्पण, समर्पण और समर्पण—यही साधना का सर्वस्व है। यह साधकों, शिष्यों और भक्तों के लिए सर्वाधिक और सर्वोपरि महत्त्व का है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी स्वयं को अपने इष्टदेव भगवान श्रीराम के चरणों में अर्पित कर दिया। उनका विश्वास था कि इष्टदेव मुझे चाहे जिस रूप में अपनावें, मेरा तो सर्वभावेन हित ही है। अपने उसी समर्पण भाव को अभिव्यक्त करते हुए 'विनय पत्रिका' में वे लिखते हैं—

ब्रह्म तू, हौं जीव, तू है ठाकुर, हौं चेरो।
तात-मात, गुरु-सखा तू सब बिधि हितु मेरो॥
तोहिं मोहिं नाते अनेक, मानियै जो भावै।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु! चरन-सरन पावै॥

अर्थात तू ब्रह्म है, मैं जीव हूँ। तू स्वामी है, मैं सेवक हूँ। मेरा तो माता-पिता, गुरु, मित्र और सब प्रकार से हितकारी तू ही है। मेरे-तेरे नाते अनेक हैं। इसलिए तुझे जो भी नाता अच्छा लगे, वही मान ले, परंतु बात यह है कि कृपालु किसी भी तरह यह तुलसीदास तेरे चरणों की शरण पा जावे।

वास्तव में प्रभु को पूर्ण समर्पित साधक, भक्त की ही ऐसी भावदशा हो सकती है, जैसी तुलसीदास जी की अपने आराध्य भगवान श्रीराम के प्रति है। समर्पण की सर्वोच्च भावदशा में ही मीरा अपने आराध्य भगवान श्रीकृष्ण के लिए गाया करती थीं—

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई॥
तात मातं भ्रात बंधु आपनो न कोई॥
छाँड़ि दई कुल की कानि कहा करिहै कोई।
संतन ढिंग बैठ-बैठ लोक-लाज खोई॥
चुनरी के किये टूक ओढ़ लीन्ही लोई।
मोती मूँगे उतार बनमाला पोई॥

अँसुवन जल सींच सींच प्रेम बेलि बोई।
अब तो बेल फैल गई आणँद फल होई॥
दूध की मथनियाँ बड़े प्रेम से बिलोई।
मारवन जब काढ़ि लियो छाछा पिये कोई॥
भगत देख राजी हुई जगत देख रोई।
दासी 'मीरा' लाल गिरधर तारो अब मोही॥

पूर्ण समर्पित साधक जब भगवान से घुलने, मिलने एवं समर्पण को आतुर हो उठता है, तो संत रैदास की तरह उसके हृदय से यह भावोद्‌गार फूट पड़ता है कि

अब कैसे छुटै नाम-रट लागी॥
प्रभुजी! तुम चंदन, हम पानी।
जा की अँग-अँग बास समानी॥
प्रभुजी! तुम घन, बन हम मोरा।
जैसे चितवत चंद चकोरा॥
प्रभुजी! तुम दीपक, हम बाती।
जा की जोति बरै दिन-राती॥
प्रभुजी! तुम मोती, हम धागा।
जैसे सोनहिं मिलत सुहागा॥
प्रभुजी! तुम स्वामी, हम दासा।
ऐसी भक्ति करै रैदासा॥

अर्थात संत रैदास कहते हैं कि मेरे मन में राम नाम की जो रट लगी है, अब वह नहीं छूट सकती है। हे प्रभुजी! आप चंदन हैं और मैं पानी, जिसकी सुगंध मेरे अंग-अंग में समा गई है।

वे कहते हैं कि हे प्रभु! आप इस उपवन के वैभव हैं और मैं मोर। मेरी दृष्टि आपके ऊपर लगी हुई है। जैसे चकोर चंद्रमा की तरफ देखता रहता है, उसी प्रकार मेरा मन भी सदैव आपके ऊपर लगा रहता है। आपसे पृथक रहकर मेरा कोई अस्तित्व नहीं है।

वे आगे कहते हैं कि हे ईश्वर! आप दीपक हैं और मैं उस दीपक की बाती हूँ, जिसकी ज्योति दिन-रात निरंतर जलती रहती है। हे प्रभु! आप मोती हैं और मैं उस मोती में पिरोया जाने वाला धागा हूँ। यह स्थिति उसी प्रकार है, जैसे सोने और सुहागा के मिलने पर होता है। हे ईश्वर! मैं सदैव आपके पास ही रहना चाहता हूँ। हे प्रभु! आप स्वामी हैं और मैं आपका दास हूँ।

साधना के उद्‌देश्य और समर्पण के महत्त्व को जनसाधारण के समक्ष प्रकाशित करते हुए श्रीअरविंद ने कहा है कि 'साधक को जो चीज पाने की चेष्टा करनी है वह है—भगवान की ओर पूर्ण उद्‌घाटन, अपनी चेतना का चैत्य रूपांतरण, आध्यात्मिक रूपांतरण, साधक को चाहिए भागवत उपस्थिति और चैतन्य में प्रवेश करना और उसके द्वारा अधिकृत होना।'

उन्होंने यह भी कहा है कि 'एकमात्र भगवान के लिए भगवान को प्रेम करना, अपनी प्रकृति में भगवान की प्रकृति के साथ समस्वर होना और अपने संकल्प, कर्म और जीवन में भगवान का यंत्र बन जाना। योग-साधना का लक्ष्य अतिमानव बनना अथवा अहं की शक्ति, दंभ या सुख के लिए भगवान को पकड़ लेना नहीं है।'

महर्षि आगे कहते हैं कि 'यह मोक्ष के लिए भी नहीं है, यद्यपि इससे मोक्ष अथवा मुक्ति प्राप्त होती है और दूसरी सभी चीजें भी मिल सकती हैं, पर ये सब चीजें हमारा उद्‌देश्य नहीं होना चाहिए। एकमात्र भगवान ही हमारे लक्ष्य हैं। इसलिए सर्वप्रथम अपने पृथकात्मक अहं को भागवतचेतना में निमज्जित करके उसमें प्रवेश कर जाना—यही पूर्णयोग के साधक का लक्ष्य होना चाहिए, पर इसके लिए साधक में आवश्यक है—स्वार्थहीनता, निष्कामता, विनम्रता, भक्ति, अचंचल सहृदयता और समर्पण का होना।'

वहीं समर्पण को लेकर पूज्य गुरुदेव ने कहा है कि 'जिन्हें प्रेम और उत्सर्ग की उच्च भावनाओं

से प्रेरित होकर प्रभु के चरणों में अपना सर्वस्व समर्पण करने की तीव्र आकांक्षा है, उन्हें इसमें जरा भी विलंब नहीं करना चाहिए। मानव जीवन अतिदुर्लभ है, इसलिए प्रभु के चरणों में संपूर्ण समर्पण करने का यही उत्तम अवसर है।'

पूज्यवर आगे कहते हैं कि 'समर्पित भाव से भगवद्उपासना करने से ही साधक की आत्मा पर परमात्मा का प्रकाश पड़ता है और साधक को अपने सत्-चित्-आनंद स्वरूप का बोध होता है। वह नर से नारायण और आत्मा से परमात्मा की ओर अग्रसर होने लगता है।'

यह स्पष्ट है कि साधना में समर्पण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। अस्तु क्यों न हम भी प्रभु के चरणों में अपना संपूर्ण समर्पण कर निर्भय, निर्भार और निर्द्वंद हो जाएँ। हम भी क्यों न अपने जीवन की डोर, प्रभु के हाथों में सौंप असीम आनंद में उड़ान भरें। हम भी क्यों न अपनी जीवनरूपी नौका की पतवार प्रभु के हाथों में सौंप संसार-सागर से पार हो जाएँ।

इस हेतु हमारे हृदय में हमेशा बस, यही भावोद्गार गूँजते रहना चाहिए कि

अब सौंप दिया इस जीवन का,
सब भार तुम्हारे हाथों में।
है जीत तुम्हारे हाथों में,
और हार तुम्हारे हाथों में॥
मुझमें तुझमें बस भेद यही,
मैं नर हूँ तुम नारायण हो।
मैं हूँ संसार के हाथों में,
संसार तुम्हारे हाथों में॥
अब सौंप दिया इस जीवन का,
सब भार तुम्हारे हाथों में।
है जीत तुम्हारे हाथों में,
और हार तुम्हारे हाथों में॥

❑

पता-फोन परिवर्तन सूचना

अखण्ड ज्योति संस्थान का स्थान परिवर्तित हो गया है, नया पता अब इस प्रकार है—

अखण्ड ज्योति संस्थान

बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड, जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)

बदले हुए नए फोन नंबर

दूरभाष नंबर : (0565) 2403940, 2412272, 2412273, 2972449

मोबाइल नंबर : 9927086291, 7534812036, 7534812037, 7534812038, 7534812039

कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस.एम.एस. न करें

नया ईमेल-akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

सपनों के झरोखे से अस्तित्व के पारलौकिक दर्शन

स्वप्न मानव जीवन का एक रहस्यमयी सत्य है, जो अधिकांशत: निद्रा के साथ जुड़ा हुआ है। प्राय: नींद के दो घंटे हर व्यक्ति के स्वप्न में बीतते हैं, जो कुछ सेकंड से लेकर 20-30 मिनट तक लंबे हो सकते हैं।

ये नाना रूपों में प्रकट होते हैं, जिनकी व्याख्या विज्ञ लोग अपने-अपने ढंग से करते देखे जाते हैं। सारत: स्वप्नों के माध्यम से तीन चीजें उजागर होती हैं—वर्तमान चिंतन, गहरे पड़े भले-बुरे संस्कार और मनोभूमि की उर्वर या बंजर स्थिति। यही विभिन्न रूपों, झाँकियों के माध्यम से स्वप्नों के झरोखे में प्रकट होते व अपनी झलक दिखाते रहते हैं।

हालाँकि स्वप्नों के रूप में उभरते विचार या संस्कारों का कोई स्पष्ट आकार नहीं होता, वे प्राय: अस्पष्ट प्रतीकात्मक व धुँधले होते हैं, यहाँ तक कि कभी-कभी बेतुके-से लगते हैं। इस बारीकी को न समझ पाने के कारण मनोविज्ञान के आचार्य सिगमण्ड फ्रायड सारे स्वप्नों को दमित वासनाओं का उभरना मान बैठे।

उनके मत में व्यक्ति की वे सभी इच्छाएँ अथवा मनोकामनाएँ, जिनकी तृप्ति जाग्रत अवस्था में नहीं हो पाती, मन की गहराइयों में चली जाती हैं। सामाजिक मर्यादाओं व साधनों के अभाव के कारण इनकी पूर्ति साधारण ढंग से नहीं हो पाती। फलत: ये नष्ट न होकर गहरे में चली जाती हैं और स्वप्नों के माध्यम से अपना प्रदर्शन करती रहती हैं।

फ्रायड के इस कथन में सच्चाई तो है, पर थोड़ी। उसी की बेटी अन्ना फ्रायड और शिष्य एडलर, फ्रायड के एकतरफे एवं अधूरे सत्य का परिमार्जन करते हुए स्पष्ट करते हैं कि मनोरोगियों व अपराधियों की मनोदशा का अध्ययन करते रहने की वजह से फ्रायड मन के गंदले कोने को बार-बार देखते-झाँकने के कारण समूचे मन को गंदला समझने की भूल कर बैठे। कुछ भी हो भूल तो भूल ही है, इसे सँभालना-सँवारना ही अधिक उचित है।

परमपूज्य गुरुदेव स्वप्नों के गुह्य स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि कुछ सपने ऐसे होते हैं, जिनमें किन्हीं लोगों के भविष्य में घटित होने वाली अनेकों घटनाओं के पूर्वसंदेश इतने सच्चे निकलते हैं मानो वे सब कुछ अदृश्य जगत् में कहीं पहले ही सृजित हो चुके हों। वैज्ञानिकों के पास तो अभी इसका कोई उत्तर नहीं किंतु भारतीय आर्षग्रंथों जैसे—अथर्ववेद, दैवज्ञ कल्पद्रुम, सुश्रुत संहिता, अग्नि पुराण आदि में इनका विस्तृत उल्लेख है।

उसके अनुसार अचेतन का संबंध विराट चेतना से रहता है। अत: घटित-अघटित घटनाओं का विवरण शीशे में पड़ने वाले दृश्यों की तरह उस पर अंकित होता रहता है और यदा-कदा उनके संकेत सपनों के माध्यम से मिलते रहते हैं। उपनिषदों के अनुसार—मन जिस भी क्षण आत्मा से संबंध स्थापित कर लेता है, उसे भूत, भविष्य और वर्तमान की काल, सीमा और स्थान की मर्यादा से बाहर की घटनाएँ एवं वस्तुएँ दिखने लगती हैं। इस तरह स्वप्न मानव जीवन की एक महत्त्वपूर्ण अवस्था है।

यदि मन शुद्ध, सात्त्विक, निर्मल और परिष्कृत हो तो सूक्ष्मजगत् के स्पंदनों को पकड़ने में वह उतना ही सक्षम होगा। इसके लिए जहाँ तक संभव हो चेतन मन को वासनाओं, तृष्णाओं और अनावश्यक कुकल्पनाओं से बचाया जाना चाहिए, जिससे अतृप्त आकांक्षाएँ अचेतन में जाकर डेरा न डाल सकें। चिंतन-मनन, विचार और व्यवहार में सरलता-उत्कृष्टता का समावेश होने पर जीवन भी परिष्कृत बनेगा, साथ ही मन भी अनगढ़ और कुसंस्कारी न रह सकेगा।

अध्यात्म उपचारों का अवलंबन इसमें सर्वोत्तम परिणाम प्रस्तुत करता है। साधना के साथ स्वप्नों के स्वरूप में उत्कर्ष आता है; क्योंकि साधना से एक विशेष दिशा में मनोभूमि का निर्माण होता है। श्रद्धा, विश्वास तथा साधना-विधि की कार्यप्रणाली के अनुसार आंतरिक क्रियाएँ उसी दिशा में प्रवाहित होने लगती हैं, जिससे मन-बुद्धि और चित्त-अहंकार का चतुष्टय वैसा ही रूप धारण करने लगता है।

भावनाओं के संस्कार अंतर्मन की गहराई में प्रवेश कर जाते हैं। गायत्रीसाधक की मानसिक गतिविधि में आध्यात्मिक एवं सात्त्विकता का प्रमुख स्थान बन जाता है। इसलिए जाग्रत अवस्था की भाँति स्वप्नावस्था में भी उसकी क्रियाशीलता सारगर्भित ही होती है। उसे प्राय: सार्थक स्वप्न ही आते हैं।

साधकों के सार्थक स्वप्नों को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(1) पूर्वसंचित कुसंस्कारों का निष्कासन,
(2) श्रेष्ठ तत्त्वों की स्थापना का प्रकटीकरण,
(3) भविष्यगत संभावना का पूर्वाभास
(4) दिव्य दर्शन।

इन चार श्रेणियों के अंतर्गत विविध प्रकार के सभी सार्थक स्वप्न आ जाते हैं। कुसंस्कारों को नष्ट करने वाले स्वप्न पूर्वसंचित कुसंस्कारों के निष्कासन में इसलिए होते हैं कि गायत्री-साधना द्वारा आध्यात्मिक नए तत्त्वों की वृद्धि साधक के अंत:करण में हो जाती है।

जहाँ एक वस्तु रखी जाती है, वहाँ से दूसरी को हटाना पड़ता है। इसी प्रकार कुसंस्कार भी मानसलोक से प्रयाण करते समय मस्तिष्कीय तंतुओं पर आघात करते हैं और उन आघातों की प्रतिक्रियास्वरूप जो विक्षोभ उत्पन्न होता है, उसे स्वप्नावस्था में भयंकर अस्वाभाविक अनिष्ट एवं उपद्रव के रूप में देखा जाता है।

दबी हुई वृत्तियाँ गायत्री की साधना करने के कारण उखड़कर अपना स्थान खाली करती हैं। इसलिए परिवर्तनकाल में वे अपने गुप्त रूप को प्रकट करती हुई विदा होती हैं। तदनुसार साधना-काल में प्राय: इस प्रकार के स्वप्न आते हैं। किसी मृत आत्मीय के दर्शन, सुंदर दृश्यों का अवलोकन, स्त्रियों से मिलना-जुलना आदि की घटनाओं के स्वप्न भी विशेष रूप से दिखाई देते हैं। इनका अर्थ है अनेकों दबी हुई तृष्णाएँ धीरे-धीरे करके विदाई की तैयारी कर रही हैं।

दूसरी श्रेणी के स्वप्न वे होते हैं, जिनमें इस बात का पता चलता है कि अपने अंदर सात्त्विकता की मात्रा में लगातार अभिवृद्धि हो रही है। सतोगुणी कार्यों को स्वयं करने या किसी अन्य के द्वारा होते हुए स्वप्न ऐसा ही परिचय देते हैं।

तीसरे प्रकार के स्वप्न भविष्य में घटित होने वाली किन्हीं घटनाओं की ओर संकेत करते हैं। कभी-कभी अस्पष्ट और उलझे हुए ऐसे दृश्य दिखाई देते हैं, जिनसे मालूम होता है कि भविष्य में होने वाले किसी लाभ या हानि के संकेत हैं, पर स्पष्ट रूप से नहीं विदित हो पाता कि इनका वास्तविक तात्पर्य क्या है।

ऐसे उलझनभरे स्वप्नों के कारण होते हैं— सर्वप्रथम भविष्य का विधान प्रारब्ध कर्मों से बनता

है, पर वर्तमान कर्मों से उस विधान में हेर-फेर हो सकता है। कोई पूर्व निर्धारित विधि का विधान साधक के वर्तमान कर्मों के कारण कुछ परिवर्तित हो जाता है, तो उसका निश्चित और स्पष्ट रूप दिखाकर अनिश्चित और अस्पष्ट हो जाता है। तदनुसार स्वप्न में उलझी हुई बात दिखाई पड़ती है।

दूसरा, कुछ भावी विधान ऐसे होते हैं, जो नए कर्मों के नई परिस्थिति के अनुसार बनते और परिवर्तित होते रहते हैं। पूर्णरूप से उसकी स्पष्टता नहीं हो पाती, तब तक उसका पूर्वाभाव साधक को मिले तो वह एकांगी व अपूर्ण होता है।

तीसरा, अपनेपन की सीमा जितने क्षेत्रों में होती है, वह व्यक्ति के अहम की एक आध्यात्मिक इकाई होती है। इतने विस्तृत क्षेत्र का भविष्य उसका अपना भविष्य बन जाता है। भविष्यसूचक स्वप्न इस अहम के सीमा-क्षेत्र तक अपने को दिखाई पड़ सकते हैं। इसलिए ऐसा हो सकता है कि जो संदेश स्वप्न में मिला है, वह अपनेपन की मर्यादा में आने वाले किसी कुटुंबी, पड़ोसी, रिश्तेदार या मित्र के लिए हो।

साधक की मनोभूमि पूर्णरूप से निर्मल न हो गई हो तो आकाश के सूक्ष्म अंतराल में बहने वाले तथ्य अधूरे या रूपांतरित होकर दिखाई पड़ते हैं। यह भी सत्य है कि स्वप्न केवल रात्रि में या निद्रावस्था होने पर ही नहीं आते।

स्वप्न जाग्रत अवस्था में भी आते हैं। जाग्रत अवस्था में साधक के मनोलोक में नाना प्रकार की विचारधाराएँ और कल्पनाएँ घुड़-दौड़ मचाती ही रहती हैं। ये स्वप्न भी तीन प्रकार के होते हैं—पूर्वसंस्कारों के निष्कासन, श्रेष्ठ तत्त्वों के प्रकटीकरण तथा भविष्य की सूचना देने के लिए मस्तिष्क में विविध प्रकार के विचार, भाव एवं कल्पना चित्र आदि।,

जो फल निद्रित स्वप्नों का होता है, वही जाग्रत स्वप्नों का होता है। कभी-कभी जाग्रत अवस्था में कोई चमत्कारी, दैवी, अलौकिक दृश्य किसी-किसी को दिखाई दे जाते हैं।

कई मनुष्यों के अंत:करण में एक प्रकार की आकाशवाणी-सी होती है और वह कई बार इतनी सच्ची निकलती है कि आश्चर्य से दंग रह जाना पड़ता है।

इस तरह स्वप्नों का स्वरूप व्यक्तित्व की परतों की तरह व्यापक एवं गहन-गंभीर है। यदि स्वप्नों में आत्मनिरीक्षण और जागरण में आत्म-सुधार का क्रम चल पड़े तो व्यक्तित्व में आश्चर्यजनक परिवर्तन घटित हो सकता है। ❑

एक संत से उनके शिष्यों ने पूछा—''गुरुदेव! मनुष्यों के एक दिखते हुए भी उनकी प्रवृत्ति को महत्त्व क्यों दिया गया है?''

संत ने उत्तर दिया—''शिष्यो! बाग में गुबैरैला और भौंरा, दोनों निवास करते हैं। दोनों दिखने में भी एक जैसे होते हैं। परंतु आकृति एक होते हुए भी उनकी प्रकृति भिन्न है। जहाँ भौंरा मकरंद का पान करता है, तो वहीं गुबैरैला गोबर एवं अन्य उच्छिष्ट पदार्थों पर बैठता है। एक जैसा दिखने पर भी भौंरे को कीटक समूह के राजा का पद प्राप्त है तो दूसरे को हेय दृष्टि से देखा जाता है। यह अंतर दोनों की आंतरिक प्रवृत्ति के कारण है।''

ऐसे हुआ संत एकनाथ को भगवद्दर्शन

संत एकनाथ के लिए उनके गुरु जनार्दन स्वामी ही उनके सब कुछ थे। गुरु ही माता, गुरु ही पिता, गुरु ही स्वामी, गुरु ही सखा, गुरु ही नारायण, गुरु ही भगवान थे। इसी भाव से एकनाथ अपने गुरु को अपना सर्वस्व मानकर उनका ध्यान-स्मरण करते थे। अपनी सच्ची श्रद्धा, निष्ठा व भक्ति के कारण ही तो एकनाथ को श्री जनार्दन स्वामी जैसे महान गुरु की प्राप्ति हुई थी।

श्री जनार्दन स्वामी भी एकनाथ की सच्ची श्रद्धा, निष्ठा व भक्ति के कारण उनसे विशेष स्नेह करते थे। उनकी अटूट श्रद्धा, निष्ठा व भक्ति को देखते हुए श्री जनार्दन स्वामी ने एकनाथ के लिए भगवत्साक्षात्कार का मार्ग प्रशस्त करने के लिए उन्हें विशेष ध्यान-अनुष्ठान करने को प्रेरित किया। उन्होंने एकनाथ को देवगढ़ के सुलभ पर्वत पर जाकर विशेष तप व भगवद्ध्यान करने का निर्देश दिया।

उन्होंने एकनाथ को श्रीकृष्ण भगवान की उपासना की दीक्षा देकर शुभमुहूर्त में देवगढ़ जाने का निर्देश दिया। गुरु का आदेश पाकर जब एकनाथ देवगढ़ पहुँचे, तब वहाँ मार्कण्डेय ऋषि का प्राचीन तपोवन देखकर और वहाँ के सूर्यकुंड में स्नान कर उन्हें अतीव आनंद अनुभव हुआ। वहाँ उन्होंने तप, ध्यान के लिए अपना स्थान साफ-सुथरा कर लिया और वहीं आसन लगाकर भगवद्ध्यान करने लगे।

गुरुमंत्र का जप व भगवान का वे नित्य ध्यान करने लगे। सरदी-गरमी, धूप-छाँह, भूख-प्यास की परवाह किए बगैर वे नित्य भगवद्ध्यान में डूबते गए। मेरे गुरु, मेरे आराध्य सर्वसमर्थ हैं। फिर मैं भूख-प्यास आदि की चिंता क्यों करूँ? सर्वसमर्थ प्रभु मेरा योगक्षेम वहन करने में समर्थ हैं। फिर चिंता किस बात की?

गुरुदेव व भगवान ही सब प्रकार से मेरी रक्षा करेंगे। इसी दृढ़ निष्ठा के साथ उन्होंने तप आरंभ किया। ब्राह्ममुहूर्त में उठकर वे स्नान-संध्यादि करके और पूर्वाभिमुख होकर सिद्धासन पर बैठकर सर्वशक्तिमान भगवान की दिव्य मनोहर छवि का अपने हृदय में नित्य ध्यान करते। यही उनका नित्य कर्म था। मन से भगवान की मनोहर छवि का ध्यान करते तथा उनकी मूर्ति का वे षोडशोपचार पूजन करते और इस प्रकार अपने गुरु से प्राप्त भगवत्प्राप्ति का अखंड साधन संपन्न करते।

वे गीता के छठे अध्याय के 13-14वें श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा ध्यानसाधकों के लिए दिए गए निर्देशानुसार काया, सिर और गले को समान एवं अचल धारण करके और स्थिर होकर, अपनी नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाकर, अन्य दिशाओं को न देखते हुए, ब्रह्मचारी के व्रत में स्थित होकर भयरहित तथा भली भाँति शांत अंत:करण के साथ अपने मन को रोककर अपने चित्त को पूरी तरह परमात्मा (श्रीकृष्ण भगवान) में लगाकर, उनके परायण होकर उनमें ही स्थित रहने लगे।

इस प्रकार अपने मन को वश में कर अपनी आत्मा को निरंतर भगवान के स्वरूप में लगाते हुए वे परमात्मा में रहने वाली परमानंद की पराकाष्ठारूपी शांति को प्राप्त करने लगे।

वे नित्य तप, ध्यान करने लगे। यह अभ्यास करते हुए बाह्य स्फुरणा की गति बंद हो गई और इसी देह में वे विदेहावस्था का आनंद पाने लगे। उनके गुरु जनार्दन स्वामी ने उन्हें भगवद्भक्ति, सगुण व निर्गुण ब्रह्म आदि का रहस्य पहले ही भली भाँति बता दिया था, पर जनार्दन स्वामी ब्रह्मज्ञान बताकर सगुण भक्ति का उच्छेद करने वाले गुरुओं में से नहीं थे।

उन्होंने एकनाथ को यह भली भाँति बता दिया था कि सगुण और निर्गुण दोनों एक ही हैं। प्राणायाम, धारणा, ध्यान, ज्ञान, कर्म आदि ये सब साधन हैं और श्रीहरि ही साध्य हैं और समुद्र में जैसे लवण का कण घुल जाता है, वैसे ही भक्त को, साधक को हरि रूप में घुल-मिल जाना चाहिए।

श्रीजनार्दन स्वामी ने उन्हें यह समझाया था कि योग के लिए योग, तप के लिए तप, कर्म के लिए कर्म और ज्ञान के लिए ज्ञान प्राप्त करना—यह भागवत धर्म की शिक्षा नहीं है। भागवत धर्म की शिक्षा यह है कि योग, तप, ज्ञान, कर्म—ये सब भगवान के लिए हैं। भगवान के बिना इनका कुछ भी मूल्य नहीं है। इनसे यदि भगवान के दर्शन हों तभी इनका मूल्य है, यही भागवत धर्म का मुख्य तत्त्व है।

अस्तु अपने गुरु के उपदेशानुसार ही एकनाथ ने जो कुछ भी योग अभ्यास किया, वह सिर्फ और सिर्फ भगवत्प्राप्ति के लिए ही किया। वे परम भक्ति के साथ नित्य भगवान का अपने हृदयस्थल में ध्यान करते रहे और इस भावपूरित अभ्यास का फल यह हस्तगत हुआ कि एकनाथ को साक्षात् आनंदकंद भगवान के दिव्य व सुमधुर दर्शन हुए।

एकनाथ को भगवद्दर्शन का परमानंद हुआ। उन्हें यह अनुभव हुआ कि सगुण और निर्गुण एक ही हैं। वे ही विट्ठल हैं, वे ही राम हैं। निर्गुण ब्रह्म ही विभिन्न रूपों में व्याप्त होता है। जिस रूप में उस ब्रह्म का ध्यान किया जाए, उसी रूप में वह प्रकट होता है।

इस प्रकार उन्हें यह ज्ञात हुआ कि जो सगुण है, वही निर्गुण है और जो निर्गुण है, वही सगुण है। घी जमा हो या पिघला, इससे उसका घृतत्व नष्ट नहीं होता, वैसे ही जो अमूर्त है, वही मूर्ति में आ गया, इससे उसका ब्रह्मत्व, उसका अमूर्त्तत्व कहीं चला नहीं गया, वह मूर्ति में भी, मूर्त्त में भी बना ही हुआ है।

इस प्रकार यह ज्ञान प्रत्यक्ष होते ही संत एकनाथ के आनंद की कोई सीमा न रही। उन्होंने आनंद से गाते-नाचते हुए भगवान की पूजा की, स्तुति की। ❑

कलिसंतरणोपनिषद् में कथा आती है कि देवर्षि नारद ने ब्रह्मा जी के पास जाकर कहा—''प्रभु! कलियुग में संसार-सागर से पार जाने के लिए किस विधान का सहारा लें?''

ब्रह्मा जी ने उत्तर दिया—''कलियुग में भगवान का नाम लेना ही एकमात्र सहारा है।'' देवर्षि नारद ने पुनः पूछा—''कौन-सा नाम?'' ब्रह्मा जी ने कहा—''नाम कोई-सा भी हो, भाव महत्त्वपूर्ण है। भगवान के प्रति समर्पित होकर किसी भी नाम से भगवान को पुकारा जाए तो वे संसार-सागर से अवश्य पार करते हैं।''

सार्वभौम है भारतीय ज्ञान

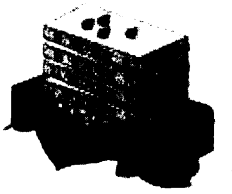

भारतीय ज्ञान का स्वरूप सार्वभौमिक, सर्वकालिक और सर्वव्यापी है। चिरपुरातन होते हुए भी चिरनूतन बने रहने की अद्‌भुत शक्ति इसमें सदैव वर्तमान है। इसका केंद्र मानवीय अंत:करण है और परिधि लोक-लोकांतर तक व्याप्त है। जड़-भौतिक जगत् के सार तक तथा सूक्ष्म आत्मिक प्रकृति के शिखर तक पहुँचने वाला यह विश्वमानवता का पहला कदम है। इसका वैभव-प्रामाणिकता, निरंतरता, नवीनता, व्यापकता, सूक्ष्मता, विराटता, असीमता, दिव्यता जैसे सैकड़ों गुणों के समन्वय से विभूषित है।

इसकी उत्पत्ति का कारण आत्मा की प्यास और परमात्मा की खोज है, परंतु इसकी उपलब्धि शब्दातीत है। इस तक पहुँचने का एकमात्र निर्दिष्ट मार्ग है—आत्मानुभूति का, आत्मानुसंधान का मार्ग। आत्मानुभूति के चरम पर पहुँचकर ही परम तत्त्व के रहस्यात्मक स्वरूप को प्राप्त किया गया है। यही नहीं, अपितु इस परम तत्त्व की अनुभूति से सर्वजन की आत्मा प्रदीप्त हो सके, इसके लिए पराविद्या के रूप में बहुविध उपायों-मार्गों को खोजा और बताया गया है।

अद्वैत की अनुभूति और एकत्व की भावना को प्राप्त करने की दिव्य प्रेरणा को उद्वेलित करने वाले महावाक्य—**अयमात्मा ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, सोऽहम्, तत्त्वमसि** आदि पराविद्या के अवलंबन की ही परिणति है। यह विद्या भारतीय ज्ञान के सर्वोच्च शिखर की अधिष्ठात्री, संरक्षक और पोषक रही है। आदि से अद्य तक सृष्टि की इस काल यात्रा में जिसने भी इस आत्मविद्या की शरण ली है, उसने ज्ञान के सर्वोच्च आदर्श को चरितार्थ कर इसकी सत्यता और प्रामाणिकता को महावाक्यों के रूप में गाया है।

आत्मानुभूति से प्रस्फुटित इन महावाक्यों की व्याख्या-विवेचना में ही शास्त्रों ने वृहद आकार लिया और अपरिमित विस्तार प्राप्त किया है। इन्हीं शास्त्रों से प्रकीर्ण ज्ञान-विज्ञान की धाराओं ने विश्वमानवता की अहर्निश यात्रा को प्रकाशित बनाए रखा है।

हमारे ऋषियों ने अपनी तप-साधना और आत्मानुसंधान द्वारा जिस जीवन-विद्या को प्राप्त किया, उसे ही शास्त्रों में परा-अपरा के नाम से जाना गया है। भारतीय ज्ञान-विज्ञान की समस्त प्रणालियों का स्रोत एवं केंद्र यही है।

इस जीवन-विद्या में अनुभूति का एक मार्ग स्थूल-से-सूक्ष्म और सूक्ष्म-से-सूक्ष्मतर होकर अपने चरम पर अद्वैत में प्रतिष्ठित हो जाता है और दूसरा सोपान सूक्ष्म-से-स्थूल की ओर गति कर **'यत् ब्रह्माण्डे तत् पिण्डे'** की अनुभूति को विभिन्न ज्ञानधाराओं के रूप में प्रमाणित करने में प्रवृत्त रहता है।

पहला मार्ग 'परा' का है और दूसरा 'अपरा' का। एक में ब्रह्म की निष्पत्ति है तो दूसरे में ब्रह्मांड की। एक गूढ़ और रहस्यात्मक है और दूसरा विवेचनात्मक और व्याख्यात्मक। जिन्हें हमारे ग्रंथों में चतुर्दश अथवा अष्टादश विद्याओं के रूप में ज्ञान के अनुशीलन का विषय बनाया गया है वे हमारी जीवन-विद्या के दूसरे भाग का ही विस्तार और आयाम हैं। भारतीय ज्ञान-विज्ञान और

अनुसंधान की समस्त प्रणालियाँ इन्हीं अष्टादश विद्याओं की परिधि में सन्निहित हैं।

विश्व में भारतीय ज्ञान की उत्कृष्टता, सूक्ष्मता, व्यापकता और महत्ता को जानने-समझने के लिए इन अष्टादश विद्याओं का परिचय अत्यंत सामयिक है। इनकी उत्पत्ति और विकास जिन मनीषियों, मंत्रद्रष्टाओं, ऋषियों द्वारा किया गया है, उनका एकमात्र लक्ष्य है—प्राणिमात्र का परम कल्याण और मनुष्य जीवन का परम उत्कर्ष।

चूँकि जीवन और जगत् में आदिभौतिक, आदिदैविक और आध्यात्मिक सृष्टि के नियम क्रियमान रहते हैं, अतः इनको जाने-समझे बिना जीवन और जगत् का कल्याण संभव नहीं हो सकता। इनका ज्ञान ही मुक्ति का उपाय कहा गया है—**'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'** मुक्तिरूपी इस पावन लक्ष्य को लेकर ही भारतीय ज्ञान की प्रणालियाँ अग्रसर हुई हैं।

पाठकों की रुचि को ध्यान में रखते हुए भारतीय ज्ञान की प्रणालियों के रूप में प्रतिष्ठित अष्टादश विद्याओं का सार-संदर्भ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

प्रथम—ऋग्वेद, द्वितीय—यजुर्वेद, तृतीय—सामवेद, चतुर्थ—अथर्ववेद, पंचम—शिक्षा, षष्ठ—कल्प, सप्तम—व्याकरण, अष्टम—निरुक्त, नवम-छंद, दशम—ज्योतिष, एकादश—पुराण, द्वादश—न्याय, त्रयोदश—मीमांसा, चतुर्दश—धर्मशास्त्र, पंचादश—आयुर्वेद, षोडश—धनुर्वेद, सप्तादश—गांधर्ववेद, अष्टादश—शिल्पवेद।

उक्त अष्टादश विद्याएँ भारतीय ज्ञानपरंपरा की संवाहक धाराएँ हैं, जिनके कारण समूचे विश्व में भारतीय ज्ञान की श्रेष्ठता और सर्वोत्कृष्टता स्थापित होती है। ज्ञान की इन विशिष्ट धाराओं को संरक्षित, प्रमाणित और गतिशील बनाए रखने के लिए भारतीय मनीषियों ने एक अनूठी अद्वितीय और वैज्ञानिक रीति-नीति का निर्माण किया है।

आत्मानुभूति से निष्पन्न ज्ञानराशि को सुरक्षित और विकसित रूप में अगली पीढ़ी तक पहुँचाने तथा उसकी सत्यता, प्रामाणिकता और अखंडता को निर्बाध बनाए रखने का इतना सुविकसित तंत्र अन्यत्र किसी संस्कृति-सभ्यता में दिखाई नहीं देता है। यहाँ अनुभूत ज्ञान को सर्वप्रथम सूत्रों में गूँथा गया है। सूत्रों की व्याख्या-विवेचना में भाष्यग्रंथों का निर्माण हुआ।

भाष्य ग्रंथों में सूत्र साहित्य, वेद, उपनिषद्, दर्शन, ब्रह्मसूत्र, मीमांसा आदि की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की गई, ताकि सूत्रों के मूल मंतव्य को उचित एवं प्रामाणिक रूप से सामने लाया जा सके। भाष्यग्रंथों की विशिष्टताओं को समझाने के लिए टीका ग्रंथ लिखे गए। टीका ग्रंथों के अनंतर शब्दों-सूत्रों के वाक्यार्थ, पदार्थ और भावार्थ बोध को लक्ष्य करके वृत्ति ग्रंथ की रचनाएँ हुईं।

भारतीय ज्ञानपरंपरा की सभी प्रणालियों में ज्ञानसंरक्षण की ऐसी अद्भुत संयोजना प्रत्यक्ष देखी जा सकती है, परंतु यहाँ ज्ञान के संरक्षण व संयोजन के साथ-साथ निरंतर नए ज्ञान की उत्पत्ति, प्रतिष्ठित ज्ञान का मूल्यांकन और उसकी सत्यता को स्थापित करने वाली अन्वेषण पद्धति भी सदैव मौजूद रही है।

भारतीय ज्ञान का कोई भी अंश बिना तर्क, तथ्य और प्रमाण के प्रस्तुत नहीं हुआ है। यह ज्ञान की सत्यता और प्रामाणिकता को जाँचने तथा नए ज्ञान को सैद्धांतिक रीति से सुसंगठित रूप देने की एक सुदृढ़ पद्धति है।

प्राचीनकाल में इसे शास्त्रार्थ, वाद-विद्या, न्याय, आन्वीक्षिकी आदि नामों से अभिहित किया गया है। भारतीय ज्ञान का स्वरूप, उसकी प्रणालियाँ, उसमें समाहित विज्ञान और उसकी व्यापकता का

बोध किए बिना कोई भी इस ज्ञान पर आधृत संस्कृति, जीवनपद्धति, मूल्यों और परंपराओं को नहीं समझ सकता है।

यदि हम अपनी संस्कृति, धर्म और जीवन आदर्शों के प्रति गर्व की भावना से अभिप्रेरित हैं और अपने इस गौरव को विश्वसमाज में अग्रणी बनाए रखने के लिए प्रतिबद्ध हैं तो यह आवश्यक होगा कि पुनः अपनी ज्ञान विरासत की ओर उन्मुख हों। हमारे पूर्वज ऋषियों ने जीवन-विद्या के रूप में जिस अकूत ज्ञान की विरासत हमें सौंपी है, उसके हम सच्चे उत्तराधिकारी तभी हो सकते हैं, जब हमारे भीतर इसके प्रति सजगता और विज्ञता आ जाए।

आधुनिक समाज पर भौतिकवाद और भोगवाद बुरी तरह छाया हुआ है। इसके दुष्प्रभाव से हमारी पवित्र ज्ञानपरंपरा भी प्रभावित और संक्रमित हो इसके पहले ही हमें सचेत होना आवश्यक है।

पहला प्रयास तो यह होना चाहिए कि भारतीय ज्ञान के श्रेष्ठतम रूप और उसकी प्रणालियों से जनसामान्य को परिचित कराया जाए और इसकी वैज्ञानिकता एवं उपादेयता को स्पष्ट रूप से उजागर किया जाए। आधुनिक समाज एवं सारे विश्व तक यह संदेश पहुँचाना समीचीन है कि भारतीय ज्ञानपरंपरा का उद्देश्य समूची विश्वमानवता है। प्रत्येक के जीवन में सांसारिक अभ्युदय और आध्यात्मिक निःश्रेयस की प्राप्ति कराने का विज्ञान इसमें समाहित है। इसका अवगाहन, अनुशीलन और संवहन—हर दृष्टि से मनुष्यमात्र के कल्याण को सिद्ध करने वाला है। ❑

एक राजा को किसी मूर्तिकार ने तीन सुंदर-सी मूर्तियाँ भेंट की थीं। राजा को उनसे बड़ा लगाव था। एक दिन एक राजसेवक से सफाई करते-करते उनमें से एक मूर्ति अचानक टूट गई। राजा को इसकी सूचना दी गई तो राजा ने क्रोध में आकर सेवक को मृत्युदंड की सजा सुना दी। सजा सुनते ही सेवक ने बाकी की दो मूर्तियाँ भी तोड़ डालीं। जब यह बात राजा को बताई गई तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ।

उसने सेवक को बुलाकर उससे ऐसा करने का कारण पूछा तो सेवक बोला—"महाराज! मूर्तियाँ तो मिट्टी की बनी थीं, उन्हें किसी-न-किसी दिन टूटना ही था, पर जिससे भी टूटतीं वो अन्यथा ही मृत्युदंड पाता। मुझे मृत्युदंड मिल ही चुका था तो मैंने सोचा कि मैं क्यों न दूसरों का जीवन बचा लूँ, ऐसे में कम-से-कम एक ही व्यक्ति सजा पाएगा, पर दो अन्य का जीवन तो सुरक्षित रह जाएगा। यही सोचकर मैंने अन्य दोनों मूर्तियाँ भी तोड़ डालीं।" सेवक की बातें सुनकर राजा की आँखें खुल गईं। उन्होंने तुरंत सेवक की सजा माफ कर उसे उच्च पद प्रदान कर दिया।

चेतना की शिखर यात्रा–253

सूक्ष्म में प्रवेश

विगत अंक में आपने पढ़ा कि शांतिकुंज अवस्थित ऋषियुग्म की स्मृति में भव्य आकार लिए सजल श्रद्धा-प्रखर प्रज्ञा का स्थान कई अर्थों में विलक्षण था। पूज्य गुरुदेव के अनुसार इस स्थान के गहरे तल में बह रही पतितपावनी भगवती गंगा की उपस्थिति लगभग पाँच हज़ार वर्षों से भी अधिक की बताई गई थी, जिसका समर्थन भूगर्भ वैज्ञानिकों ने भी किया। 90 के दशक के उत्तरार्द्ध तक यह स्थान गुरुसत्ता की घनीभूत प्राण-ऊर्जा का केंद्र बनकर निवासियों एवं आगंतुकों, दोनों के हेतु किसी कल्पवृक्ष से कम न था। वंदनीया माताजी के निर्देशन में तैयार हो रहे इस ऐतिहासिक स्मारक को अंतिम स्वरूप देने की बारी आ गई थी। कार्यकर्त्ताओं की गोष्ठी के क्रम में जब वंदनीया माताजी द्वारा अपने स्वयं के अंतिम संस्कार को भी इस स्थान पर किए जाने की बात कही गई व इस संबंधी कार्य की रूपरेखा को भी सुस्पष्ट किया गया तो इससे गायत्री परिजनों के हृदय में खलबली मच गई। वंदनीया माताजी के प्रत्यक्ष सान्निध्य के सौभाग्य से अब सदा के लिए वंचित रहना पुत्र समान कार्यकर्त्ताओं की कल्पना से परे था। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण ...

चार वेद, एक सौ आठ उपनिषद्, छह दर्शन, चौबीस गीता, बीस स्मृतियाँ, अठारह पुराण, गायत्री महाविज्ञान, तीन हजार से ज्यादा पुस्तकें, चार आश्रम, चौबीस-दो सौ चालीस और फिर चौबीस सौ शक्तिपीठ, चार हजार से ज्यादा शाखाएँ, चौबीस लाख से ज्यादा सहयोगी, हिसाब लगाते-लगाते उस ऋषि आत्मा की कलम थकने लगी थी। सूची थी कि पूरी ही नहीं हो रही थी।

दृश्य गुरुदेव के कक्ष का था, जहाँ वे एक साधारण कुरता या सिली हुई बनियान और धोती पहनकर कुछ लिखते-पढ़ते रहते। नहीं लिखते-पढ़ते तो आए आगंतुक अतिथियों और परिजनों से कुशलक्षेम पूछने के अलावा दुनिया जहान के विषयों पर चर्चा करते रहते।

उन गुरुदेव के सामने श्वेत केश और श्मश्रू (दाढ़ी) धारण किए कमर से ऊपर खुले बदन उन महात्मा को फिर याद आया। पूछने लगे सन् 1952 से अब तक आपने यज्ञ कितने कराए होंगे पूज्यवर। सवाल गुरुदेव से किया गया था और उनका उत्तर- पता नहीं। हमने कुछ किया ही नहीं तो हिसाब क्यों रखें। फिर उन्हीं ऋषि आत्मा ने कहा दस हजार, बीस हजार, लाख, सवा लाख। एक-एक संख्या बोलते हुए वे गुरुदेव से पूछते जा रहे थे।

गुरुदेव ने कहा कि हमसे क्यों पूछते हो। हम तो बाँस की एक खाली और खोखली पोंगली की तरह हैं। हमारे गुरुदेव ने उसे जिस तरह बजाना चाहा, बजा दिया। फिर उन्हीं ऋषि आत्मा ने पूछा और तप, अनुष्ठान, महापुश्चरण आदि का भी

कोई हिसाब नहीं होगा? नहीं प्रभु! नहीं। नहीं 'महाराज'! लेकिन आप यह सब क्यों पूछे जा रहे हैं?

इस बार गुरुदेव की बारी थी। उत्तर में उन ऋषि ने कहा—"जब रामावतार का उद्देश्य पूरा हो गया तो रावण का आसुरी आतंक नष्ट हुआ और चारों दिशाओं में सुख-शांति छा गई तो जानते हैं न कि धर्मदेव उनके पास आए थे। उन्हें याद दिलाने के लिए, प्रभु आपका काम पूरा हुआ। अब इस धरा-धाम से प्रस्थान कीजिए और अपने धाम में विराजिए।"

गुरुदेव ने उन ऋषि की बात सुनी और कहा, हमें समझ नहीं आ रहा। हम तो यहाँ कोई राम-राज्य स्थापित नहीं करना चाहते थे। न ही किसी राजवंश से आए हैं। कोई राज्य या शासन भी नहीं चलाया। हमारी मार्गदर्शक सत्ता ने जैसे चलाया, चल लिए। उनके इशारे पर चलते हुए सत्तर वर्ष का यह जीवन बिता लिया। अब क्या करें? आप ही बताइए। गुरुदेव से यह संवाद और भी लंबा खिंचता। सीढ़ियों पर किसी के आने की आहट हुई। उस ऋषि आत्मा ने अपने पोथी-पन्ने समेटे और क्षणभर में अपना काय-कलेवर बदलकर मानवी रूप में आ गई।

मानवीय कलेवर धारण करते हुए उस दिव्य आत्मा ने कहा—"अब बस हुआ। जिस सिद्धलोक से आए हैं, वहाँ का भी ध्यान कीजिए। संसार को चलाने वाले यति योगी अनाश्रित हो रहे हैं। उन्हें कहीं से संरक्षण नहीं मिल रहा। अब बहुत हुआ पूज्यवर।" उन महापुरुष ने कहा और उठने को हुए। तब तक सीढ़ियों पर आ रही आहट द्वार पर आ गई थी। गुरुदेव ने उस आकृति की ओर देखा और पूछा—"क्या खबर लाए हो बेटा।" उस आकृति ने द्वार पर ही खड़े-खड़े कहा—"हिमालय की तराई क्षेत्र से कुछ परिजन आए हैं। शक्तिपीठों का संकल्प लेना चाहते हैं।"

गुरुदेव ने कहा—"अब तुम लोग ही संकल्प ग्रहण करा दो। उन्हें माताजी के पास ले जाओ।" यह पहला क्षण था, जब गुरुदेव ने कोई पुण्य संकल्प किसी और की साक्षी में करने के लिए कहा हो। फिर उन्होंने कहा—"हम जिन दिनों अज्ञातवास में थे, तब भी तो यह सब होता था या नहीं। संकल्प, अनुष्ठान, दीक्षा, संस्कार, संरक्षण आदि की व्यवस्था माताजी की देख-रेख में ही होती थी। अब आगे से वे ही यह सब करेंगी। हम दूसरे कामों में लगेंगे। वे ज्यादा जरूरी हैं।"

वे कार्यकर्त्ता द्वार से ही लौटने लगे। पलटते हुए फिर ठिठके और उन विभूति को निहारा, जो गुरुदेव के सामने बैठे थे, लेकिन वहाँ तो कोई नहीं था। कहीं भ्रम तो नहीं हुआ है। विचार आया। आँखें मलीं और गौर से देखा। उस स्थान पर एक छायाकृति दिखाई दी। पहचानने की कोशिश करते कि वह आकृति फिर लुप्त हो गई। अब उन्होंने कोई प्रयास नहीं किया और चुपचाप जैसे आए थे, वैसे ही सीढ़ियाँ उतरते हुए लौट गए। उस दिन सन् 1984 की रामनवमी थी। शांतिकुंज में करीब ढाई हजार कार्यकर्त्ता नवरात्र अनुष्ठान की पूर्णाहुति कर रहे थे। सूचना आई कि साधक प्रणाम करने आ रहे हैं। नीचे लंबी कतार लगी हुई है।

गुरुदेव ने कुछ नहीं कहा। दाहिना हाथ उठाया और बोले—"अब बस।" गुरुदेव के जीवन और कृतित्व का अविज्ञात रहने वाला अध्याय खुल गया था। इसे बाद में, शायद उस दोपहर को ही सूक्ष्मीकरण में प्रवेश का नाम दिया गया। गुरुदेव अब किसी से मिलेंगे या नहीं, मिलेंगे तो कब और किससे मिलेंगे, उनका प्रत्यक्ष दर्शन कैसे होगा,

कब होगा आदि प्रश्न साधकों के मन में उठे तो सही, पर अनुत्तरित ही रह गए।

सीमित संपर्क

परिजनों और अतिथियों से गुरुदेव का मिलना-जुलना पहले ही सीमित हो गया था। जिस दिन की यह घटना है, उस दिन लगभग विराम लग गया। समझा गया कि वही लोग मिल सकेंगे जिन्हें गुरुदेव बुलाएँगे, लेकिन धीरे-धीरे यह अपेक्षा ऐसे ढंग से पूरी होने लगी, जिसकी कल्पना नहीं की गई थी।

गायत्री नगर में प्रवेश द्वार के पास बनी सजल श्रद्धा, प्रखर प्रज्ञा के सामने ही परिजन अपनी बात कहते और उन्हें लगता कि गुरुदेव से प्रत्यक्ष संवाद हो रहा है। सूक्ष्मीकरण का निर्णय लेने से पहले गुरुदेव ने परिजनों को तरह-तरह से संकेत दिए थे। एकाधिक अवसर पर कहा था कि आने वाला समय गहन संकटों और चुनौतियों से भरा हुआ है। इन आकलनों की पुष्टि विज्ञान जगत् भी कर रहा था।

सन् 1981 से उभरने वाले सौर कलंक, उसी वर्ष 18 फरवरी को होने वाला असाधारण सूर्यग्रहण, बृहस्पति ग्रह की क्षुब्ध स्थिति आने वाले दिनों के अत्यंत कष्टकर होने की घोषणा कर रही थी। इन अशुभ आशंकाओं को टालने के लिए विशेष साधना पर जोर दिया गया। परिजनों को याद होगा कि गुरुदेव ने सन् 1980 से 1984 तक जाग्रत आत्माओं से विशिष्ट साधना क्रम अपनाने के लिए कहा था।

इस साधना में प्राण आकर्षण, नियति संतुलन, आहार-विहार के संयम, गायत्री यज्ञों के विशेष आयोजन, सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन और दुष्प्रवृत्ति निवारण जैसे प्रयोग शामिल हैं।

युगसंधि की वेला

अशुभ आशंकाओं को शुभ व कल्याण की दिशा में मोड़ने के लिए उन दिनों एक विलक्षण कार्ययोजना प्रस्तुत की गई थी। सन् 1980 से 2000 के बीस वर्षों को युगसंधि वेला बताते हुए उस अवधि को चार पंचवर्षीय योजनाओं में विभाजित किया गया। विशिष्ट साधना-उपासना इस युगसंधि वेला के प्रथम चरण का अनुष्ठान था। उन्नीस शक्तिपीठों में प्राण प्रतिष्ठा-स्थापना कार्यक्रमों और अगणित भूमिपूजन आयोजन संपन्न करने के बाद गुरुदेव ने प्रवास कार्यक्रम स्थगित कर दिए।

तब भी परिजनों को अप्रिय और अशुभ लगा था। भावनाशील परिजनों ने अपने कार्यक्रम जारी रखने का अनुरोध किया तो उन्हें समझाया भी। फिर भी कार्यकर्त्ताओं का भावुक मन नहीं माना और जगह-जगह से अपना निवेदन लेकर वे शांतिकुंज आने लगे।

गुजरात में वड़ोदरा के पास से मनसुख भाई और आंध्रप्रदेश में हैदराबाद से शिवरत्नम के दौड़े चले आने का किस्सा मशहूर है। सन् 1982 के शुरुआती महीने रहे होंगे, जब इन परिजनों ने आकर गुहार मचाई। मनसुख भाई ने तो हठ ठान लिया कि गुरुदेव आपने अपना निर्णय नहीं बदला तो हम लोग यहीं बैठकर उपवास करेंगे। उनका साथ देने के लिए शिवरत्नम और दूसरे परिजन भी आगे आए।

गुरुदेव ने कहा—"दो-तीन दिन अभी यहीं रुक जाओ। इसके बाद भी तुम्हारा निर्णय नहीं बदला तो मैं तुम्हारी बात अपने गुरुदेव के सामने रखूँगा। उनसे अनुमति लूँगा।" मनसुख भाई और शिवरत्नम को सुनकर आश्चर्य हुआ। मनसुख भाई ने तो पूछ ही लिया कि आप अपने इन कार्यक्रमों, छोटे-छोटे फैसलों के लिए भी अपनी मार्गदर्शक सत्ता से पूछते हैं क्या? गुरुदेव चुप रहे। मनसुख भाई के साथ आए एक अन्य कार्यकर्त्ता ने कहा कि यह छोटा-मोटा निर्णय नहीं है भाई। धुआँधार चल रहे आयोजनों को बीच में रोक देना मामूली बात

थोड़े ही है। फिर गुरुदेव तो हर काम दादागुरु से अनुमति लेकर ही करते हैं।

उन कार्यकर्त्ता ने ऐसे निर्णयों की एक फेहरिस्त ही सुना दी। जिसमें पिछले फैसलों को पलटा गया था। इन फैसलों में राजनीति से अचानक उपराम होने, बार-बार अपना निवास (आगरा, मथुरा, हरिद्वार और हिमालय) बदलने, कई नए आरंभ अचानक रोक देने, गायत्री परिवार की लोकप्रियता बढ़ने पर उसके सदस्यों की छटनी करने लगने जैसे निर्णय उन कार्यकर्त्ता को याद आ गए।

उनके साथी परिजन ने स्थितियाँ बदलते ही नए निर्धारण कर लेने के बारे में बताया तो मनसुख भाई ने कहा—"हमारा प्रयत्न विफल जाएगा क्या?" उन साथी ने कहा—"अभी से क्यों यह सब कहा जाए। गुरुदेव ने तीन दिन रुकने के लिए कहा है तो देखते हैं या तो हमारा मन बदलता है अथवा उनका फैसला।" यह बातचीत हुए दो ही दिन बीते थे कि मनसुख भाई को लगा, उन्हें ही अपना हठ छोड़ना पड़ेगा।

शांतिकुंज में उन दिनों प्रत्यक्ष रूप से ऐसी गतिविधियाँ चल रहीं थीं, जिन्हें देखते हुए गुरुदेव के प्रवास स्थगित रहने में ही सार समझ आया। देखा कि आश्रम को जाग्रत तीर्थ बनाने के लिए सूक्ष्मस्तर पर भी कई प्रयोग चल रहे हैं। गुरुदेव दिन में दो-तीन बार गायत्री नगर क्षेत्र में आते। यहाँ हो रही संरचनाओं की प्रक्रिया देखते और निर्माण में लगे लोगों को निर्देश देते।

आश्रम में गायत्री परिवार के सदस्यों का आना-जाना तो लगा ही रहता, इन तीन दिनों में कई विशिष्ट व्यक्ति भी आते-जाते देखे गए। उन्होंने गुरुदेव से अपने काम के बारे में पूछा, परामर्श लिया और मार्गदर्शन माँगा।

गुरुदेव हर जगह

जिस कमरे में मनसुख भाई और उनके साथी ठहरे थे, वहीं पास वाले कमरे में तिरुअनंतपुरम के एक वैज्ञानिक दयानिधि वर्धन (डी० वर्धन) भी आए हुए थे। बातों-ही-बातों में उन्होंने बताया कि केरल की कुछ पश्चिमी रुझान वाली संस्थाएँ यज्ञ अग्निहोत्र पर काम कर रही हैं। उनका उद्देश्य इस विज्ञान को हथिया लेना है। हम लोग अपनी विद्या को अपने पास ही बचाए रखना चाहते हैं। गुरुदेव से इस बारे में परामर्श किया है।

मनसुख भाई ने पूछा—"आपको ठीक लगे तो हमें बताइए न कि गुरुदेव ने आपका क्या समाधान किया।"

इस पर डी. वर्धन ने बताया—"गुरुदेव ने आज ब्रह्मवर्चस देख आने के लिए कहा है। वहाँ यज्ञ, अग्निहोत्र की सूक्ष्म और विशेष सामर्थ्य पर अनुसंधान चल रहा है। प्रयोग भी हो रहे हैं।" डी० वर्धन पहली बार शांतिकुंज आए थे। मनसुख भाई ने ब्रह्मवर्चस आरण्यक के बारे में अपनी समझ और जानकारी के बारे में बताया। डी० वर्धन ने कहा—"वहाँ जाकर देखते हैं। इस बारे में और पता चलेगा। गुरुदेव की प्रेरणा हुई तो केरल में भी हम लोग इसी तरह की संस्थापना करेंगे।" सुनकर मनसुख भाई के मन में विचार आया कि अपनी बात भी कर ही ली जाए।

उन्होंने कहा—"आप लोग तिरुअनंतपुरम में ब्रह्मवर्चस जैसी योजना शुरू करेंगे तो वहाँ गुरुदेव को भी ले जाएँगे क्या?" पूछने के बाद वे थोड़ा झेंपे। लगा कि क्या बचकाना बात कह दी है। डी० वर्धन ने कोई खास प्रतिक्रिया तो नहीं की, सिर्फ इतना ही कहा—"हम अभी विचार ही कर रहे हैं। संस्थान बनाते हैं तो गुरुदेव जाएँगे या उनके प्रतिनिधि, यह देखना उनका काम है। मुझे तो

लगता है कि वे यहाँ से सब कुछ संचालित, आयोजित कर सकते हैं। उन्हें कहीं आने-जाने की आवश्यकता शायद नहीं है।''

मनसुख भाई ने यह उत्तर सुना तो पहली बार लगा कि वे लोग व्यर्थ ही हठ करते हुए यहाँ आए हैं। क्या यह उचित नहीं है कि गुरुदेव के प्रयास जारी रखने के बजाय उनके मिशन और संदेश को नए क्षेत्रों में फैलाया जाए। यह विचार आते ही मनसुख भाई ने अपना माथा झटका और वापस अपनी जिद पर सवार हो गए।

क्षेत्रों में प्रवास स्थगित हो जाने के बाद कार्यकर्त्ताओं का आना-जाना अधिक बढ़ गया था। जगह-जगह बन रहे शक्तिपीठों और प्रज्ञा संस्थानों के जरिये एक तो नए कार्यकर्त्ता जुड़ रहे थे, दूसरे गुरुदेव के यात्रा कार्यक्रमों को लेकर परिजन जिस तरह व्यस्त हो जाते थे, उससे भी उन्हें अवकाश मिल रहा था।

कामाख्या (असम) की ओर से आए साधकों की मंडली उन दिनों शांतिकुंज में कुछ परिजनों का ध्यान आकर्षित किए हुए थी। बालकिन साव, चंद्रिका प्रसाद, अवनी शरण और रमेश नहलानी जिस जगह ठहरे थे, वहाँ कुछ उत्सुक कार्यकर्त्ता भी थे। बालकिन साव उन्हें बता रहे थे कि इस बार नवरात्रों में कामाख्या आए, कुछ तंत्र साधकों ने गायत्री मंत्र के तांत्रिक प्रयोग किए हैं। उत्सुक परिजनों ने उन प्रयोगों के बारे में जानना चाहा।

उनके अनुसार तो तंत्र का अर्थ ही मद्य, मांस, मीन आदि मकारों का खुला प्रयोग था। बालकिन ने कहा कि हम लोग भी यही समझते थे। जब सुना कि शक्तिपीठ में कुछ उपासक गायत्री का यह प्रयोग करने वाले हैं तो हम लोग वहाँ गए। उनसे कहने लगे कि गायत्री तो परम सात्त्विक भावनाओं से प्रसन्न होने वाली शक्ति है। आप तंत्र से इसे क्यों दूषित कर रहे हैं? इस पर संकल्प ले चुके साधक ने पास रखा तकिया उठाया और पूछा न तो आप अपनी जगह से हिलें और न ही मैं यहाँ से उठूँ, अब बताइए इस तकिए को आप तक कैसे पहुँचा सकता हूँ।

साव उन साधक से तीन-चार मीटर की दूरी पर थे। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। उत्तर शायद तुरंत सूझ नहीं रहा था। उन साधक ने अपनी जगह पर बैठे-बैठे ही तकिया उठाया और साव की तरफ फेंका। दोनों में से कोई भी अपनी जगह से नहीं हिला और तकिया जहाँ पहुँचना था, वहाँ पहुँच गया। उन साधक ने अब कहा बन गई न बात। तंत्र इसी का नाम है। अपने आप को विस्तार देने का नाम तंत्र है। वह न वाममार्गी होता है और न ही अभिचार कर्म वाला।

बालकिन साव ने बताया कि उन साधक ने इसके बाद गायत्री तंत्र की जो व्याख्या की, वह हम लोगों को अभिभूत कर रही है। गायत्री महाविज्ञान में गुरुदेव ने गायत्री के तंत्र प्रयोगों का जिक्र किया है। उन साधकों को देख-सुनकर लगा कि उन्होंने गुरुदेव द्वारा इंगित इन प्रयोगों के अभ्यास की कोशिश भी की है।

इसके बाद साव ने उन प्रयोगों के अनुभव भी बताए। एक तंत्रमार्गी साधु के बारे में बताया जो कह रहा था कि तुम लोग यहाँ क्या कर रहे हो। अपने पिता (गुरु) के घर जाओ। वहीं निवास करो। इन दिनों तो कम-से-कम उनके पास ही रहना चाहिए। गुरुसत्ता के आस-पास अमृत झरता है।

अहं पर विजयी अनुग्रह

इधर मनसुख भाई और उनके साथियों का शांतिकुंज में तीसरा दिन पूरा हो रहा था। मन स्थिर नहीं हो रहा था कि गुरुदेव के सामने अपनी बात दोहराएँ या नहीं। संयोग कहें या सौभाग्य कि उस

दिन गुरुदेव किसी कार्यक्रम के सिलसिले में गायत्री नगर की ओर आए।

मनसुख भाई को लगा कि अच्छा मौका है। वह प्रणाम करने के लिए तेज कदमों से उनकी ओर बढ़े। पास पहुँचते ही गुरुदेव ने पूछा—''तुम्हारे तीन दिन पूरे हो रहे हैं बेटा! क्या सोचा? अभी रुकोगे या जाओगे?'' मनसुख भाई को लगा कि भीतर-ही-भीतर जो उद्वेलन चल रहा था वह रुक गया है। झील में पानी जैसे ठहरने लगा है। कुछ देर किसी पत्थर के गिरने पर जो हिलोरें उठने लगीं थीं, वे शांत हो गई हैं और साफ-सुथरे जल में दृश्यबिंब स्थिर हो रहा है।

गुरुदेव ने पूछा ही था कि मनसुख भाई ने शांत और स्थिर मन से कहा—''आप जैसा कहें गुरुदेव।'' ''भगवान जिस तरह हम लोगों से काम लेना चाहें लेने दो। उसे अपनी इच्छा के अनुसार चलाने की कोशिश मत करो।''—गुरुदेव के इन दो वाक्यों ने मनसुख भाई का संशय साफ कर दिया। अब वहाँ कोई दुविधा नहीं रह गई थी। आग्रह भी नहीं था। उसने देखा गुरुदेव आगे निकल रहे हैं। वह लौटकर अपने कमरे में आया और साथियों से बोला—''हम लोग गुरुदेव से आग्रह और हठ करने के बजाय उनकी बात मानें, इसी में भला है।''

संगी-साथियों के साथ थोड़ी देर बातचीत चलती रही, फिर वे उठे और गायत्री नगर में बन रही प्रखर प्रज्ञा, सजल श्रद्धा की छतरियों की ओर चले। निर्माणकार्य लगभग पूरा हो चुका थां। उसके आस-पास खाली पड़ी जगह पर कुछ साधक आसन बिछाए बैठे ध्यान का अभ्यास कर रहे थे। मनसुख भाई और दूसरे सदस्य भी पास ही बैठ गए।

कुछ मिनट बीते होंगे कि ध्यान की गहराई में जाने की अनुभूति हुई तो लगा कि आस-पास और भी कई लोग ध्यान कर रहे हैं। जो लोग सशरीर वहाँ बैठे थे, ध्यान कर रहे साधकों की संख्या उन सबसे कई गुना अधिक थी। उनके श्वास-उच्छवास की आवाजें सुनाई दे रहीं थीं।

पूरक और रेचक की गति इतनी लयबद्ध थी, लगता था कि कई लोग नहीं, उन सबका समुच्चय एक विराट इकाई की तरह प्राणायाम का अभ्यास कर रहे हैं। एक ही लय-ताल में सैकड़ों लोग श्वास लेते और छोड़ते प्रतीत हो रहे थे। पता नहीं कितनी देर बैठे, जब आँखें खोलीं तो देखा कि और साधकों की भी पलकें खुली हुई हैं। वे अपने आस-पास बैठे साधकों को देखने लगे हैं। मानो पूछ रहे हों कि जो अनुभूति हमें हुई, वह आपको भी हुई क्या? (क्रमशः)

एक नगर में एक कुख्यात चोर रहा करता था। उसने अपने पुत्र को भी चोरी करना सिखा दिया था। मरते समय उसने अपने पुत्र को शिक्षा दी—''बेटा! तू चाहे जो कुछ करना, परंतु कभी किसी संत के सत्संग का हिस्सा न बनना।''

एक बार वह लड़का रात में चोरी करने निकला तो मार्ग में एक संत का आश्रम पड़ा। उसे सुनाई पड़ा कि संत अपने शिष्यों से कह रहे थे—''इस संसार में कर्म की गति है। हर व्यक्ति को अपने शुभ व अशुभ कर्मों का फल भुगतना ही पड़ता है।'' बस, इतना-सा वाक्य उसके कान में पड़ने की देरी थी कि उसके मन में उथल-पुथल मच गई। चोरी करना भूलकर वह संत के पास पहुँचा और उनसे पूछने लगा—''क्या उसे भी उसके दुष्कर्मों का फल भुगतना पड़ेगा?'' संत बोले—''निश्चित रूप से।'' संत की बात सुनकर उसने अपने कुकर्मों का प्रायश्चित करने हेतु साधक का जीवन अपना लिया। क्षण भर के सत्संग से उसका पूरा जीवन बदल गया।

सांस्कृतिक एकता के सूत्र

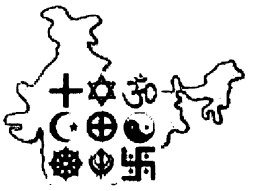

विश्व में विकास की कथा-गाथा चरमोत्कर्ष पर है। आज विश्व एक गाँव 'ग्लोबल विलेज' बन गया है। टेक्नोलॉजी ने हमें कुछ ही घंटों में कहीं-से-कहीं पहुँचा दिया है। सारा विश्व एक गाँव तो बन गया है, परंतु यह एकता हमारी भावनाओं में नहीं है। आज संपूर्ण विश्व तीव्र परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है।

कहा जा रहा है कि बदलते समीकरणों के अनुसार 21वीं सदी भारत और चीन की सदी होगी। भारत आज विश्व की उभरती हुई आर्थिक महाशक्ति है। भारत का भविष्य अत्यंत संभावनापूर्ण है, परंतु इसका मुख्य आधार भारत के विशाल आकार और जनसंख्या में निहित है।

एक अन्य बिंदु यह है कि भारत विश्व की सभी प्राचीनतम सभ्यताओं में से एकमात्र जीवित एवं विकसित सभ्यता है। भारत विश्व का एकमात्र जीवित प्रागैतिहासिक राष्ट्र है। अतीत से भविष्य तक इतने लंबे अंतराल में इतने विराट स्वरूप को भारत ने संरक्षित एवं सुरक्षित रखा है। यह पश्चिमी विचारकों के लिए आश्चर्य और शोध का विषय है।

भारत की एकता का मुख्य आधार आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक कारणों में निहित नहीं है। इन आधारों पर गठित बड़े-बड़े राष्ट्रों का जीवन बहुत लंबा नहीं होता। इसके कई उदाहरण हैं। इतिहास में अरब क्षेत्र में तुर्की और मेसोपोटामिया के साम्राज्य, उत्तरी अफ्रीका में मिस्र का साम्राज्य और यूरोप में रोमन साम्राज्य आज उसी क्षेत्र में अनेक राष्ट्रों में विभाजित हैं।

पिछली शताब्दी में ही चेकोस्लोवाकिया और सोवियत संघ का विघटन इसका प्रमुख उदाहरण है। भारत में एकता का सूत्र यहाँ की संस्कृति, धर्म और सांस्कृतिक मनोविज्ञान में इतने सुव्यवस्थित ढंग से बसा हुआ है कि सामान्य तौर पर वह नजर ही नहीं आता।

भारतीय संस्कृति में एकता का सूत्र अत्यंत गहरा है। इसी कारण यह आज भी जीवंत एवं विकासशील है। इस संदर्भ में हरबर्ट रिसले का कहना है कि भारत में भौगोलिक, सामाजिक, भाषा, रीति-रिवाज, धर्म की भिन्नता होने पर भी कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक यह एकता के सूत्र में बँधा है।

यह एकता है सांस्कृतिक एकता, जिसने भारत की विविधता को अपने में समेटकर अभिन्न एवं वृहद रूप प्रदान किया है—यह एक अद्‌भुत घटना है। भारतीय संस्कृति की यह एक अद्‌भुत विशेषता है कि हम यहाँ के धर्म और संस्कृति के किसी भी प्रतीक पर आस्था रखें तो संपूर्ण भारतवर्ष से स्वत: जुड़ जाएँगे।

इसे कुछ इस तरह से समझा जा सकता है। जैसे यदि कोई भारतीय कहे कि वह वैष्णव है, उसकी आस्था भगवान राम में है तो उत्तर में अयोध्या से लेकर चित्रकूट होते हुए धुर दक्षिण में रामेश्वर तक सभी स्थानों से उस व्यक्ति की आस्था स्वयं जुड़ जाएगी। यदि कोई व्यक्ति कहे कि उसकी आस्था भगवान श्रीकृष्ण में है तो उत्तर में उनकी जन्मभूमि मथुरा, पूर्व में जगन्नाथपुरी, पश्चिम में द्वारका और दक्षिण में तिरुपति बालाजी

तक देश के सभी स्थानों से उसकी आस्था स्वत: जुड़ जाएगी।

यदि कोई यह कहे कि वह वैष्णव नहीं, बल्कि शैव है और उसकी आस्था भगवान शंकर में है तो उत्तर में अमरनाथ, मध्य में उज्जैन के महाकाल, पश्चिम में सोमनाथ और दक्षिण में रामेश्वरम सहित द्वादश ज्योतिर्लिंगों के द्वारा भारत के हर कोने से उसकी आस्था जुड़ जाएगी।

यदि कोई यह कहे कि वह शाक्त है और उसकी आस्था देवी में है तो उत्तर में वैष्णो देवी, मध्य में विंध्यवासिनी, पश्चिम में मुंबा देवी, पूर्व में कामाख्या और दक्षिण में कन्याकुमारी सहित देश के सभी भौगोलिक क्षेत्रों में उस व्यक्ति की आस्था अपने आप जुड़ जाएगी।

एकता का यह सूत्र केवल विचारों में ही सीमित नहीं था। इसका क्रियात्मक स्वरूप भी अनादिकाल से दिख रहा है। देश के चार स्थानों नासिक, उज्जैन, प्रयाग और हरिद्वार में हर तीन वर्ष के बाद कुंभ मेला होता है और देश के समस्त साधु-संत अखाड़े लगाकर इन चारों स्थानों की यात्रा करते रहते हैं।

आदि शंकराचार्य जी ने चारों कोनों पर चार मठ बनाए और वहाँ के शंकराचार्य बनने के लिए यह बाध्यता बनाई कि उसी क्षेत्र का व्यक्ति शंकराचार्य नहीं बनेगा। नेपाल में पशुपतिनाथ का मुख्य पुजारी शताब्दियों से कर्नाटक का ही होता रहा है अर्थात राजनीतिक पृथकता भी एकता को सांस्कृतिक सूत्र से जोड़े रखती है।

इतना ही नहीं, भारत में धर्म और संस्कृति के कर्मकांडों में भी, जिसकी आधुनिक बुद्धिजीवी तीव्र आलोचना करते हैं, राष्ट्रीय एकता के गहरे सूत्र हैं। हमारा धार्मिक कर्मकांड भी इसी विशेषता को स्पष्ट करता है।

पूजा करते समय जब पुरोहित हमसे हाथ में जल लेने को कहता है तो संकल्प स्वरूप यह मंत्र बोला जाता है—**'गंगे च यमुने च गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिंधु, कावेरी जलेऽस्मिन सन्निधिं कुरु।'** अर्थात पूजास्थल पर बैठे हुए हम भगवान से देश की समस्त नदियों के साथ जुड़ जाते हैं। विधान के अनुसार त्योहारों में स्नान करते समय भी इसी मंत्र का उच्चारण किया जाता है।

स्पष्ट है कि भारत की एकता के सूत्र जिन देवी-देवताओं और परंपराओं में निहित हैं, उनके कारण देश का कोई हिस्सा यदि किसी अन्य के प्रभाव में हो तो भी दूसरे हिस्से में बैठे व्यक्ति की भावना उस हिस्से से जुड़ी रहती है।

भारतीय संस्कृति में जरूरी नहीं कि हम पूजा बाहर जाकर करें। हम अपने देवता घर में ही रख सकते हैं। घर में उपासना करने से किसी भी देवता की आराधना से हमारी आस्था सारे भारत के साथ जुड़ जाती है। यहाँ तक कि हम धार्मिक विधान के अनुसार स्नान करते हुए स्वयं को सारे भारत की नदियों से जुड़ा हुआ महसूस कर सकते हैं।

विश्व की कोई भी निरंकुश शक्ति मंदिरों, मठों और आस्था के केंद्रों को तो नष्ट कर सकती है, परंतु एक-एक व्यक्ति के आवास में प्रवेश कर उसके क्रियाकलाप को नियंत्रित नहीं कर सकती और स्नानागार में स्नान कर रहे व्यक्ति को नियंत्रित करना तो अकल्पनीय है। आस्था और विश्वास हमारे मन में बसता है।

भारत की एकता के सूत्र सांस्कृतिक आस्था और धार्मिक कर्मकांड से लेकर घर के स्नानागार तक इतने सूक्ष्म तरीके से बने हुए हैं कि शताब्दियों के विदेशी शासन के बाद भी भारत अपनी राजनीतिक एकता को अक्षुण्ण रखकर विराटस्वरूप

के साथ अडिग एवं अचल है। इसी कारण हम 21वीं सदी में विश्व का मार्गदर्शन करने के लिए तैयार खड़े हैं। जबकि विश्व की अन्य महानतम शक्तियाँ अपनी किसी भी किस्म की एकता को नहीं बचा पाईं। इसीलिए भारत एक चिरंतन राष्ट्र है, सनातन राष्ट्र है।

भारत की युवा पीढ़ी को इसकी शक्ति के इस वास्तविक, मूल और नैसर्गिक तत्त्व को समझना होगा, इसे संरक्षित और विकसित करना होगा— तभी भारत 21वीं सदी में विश्व का नेतृत्व कर पाएगा। भारतीय एकता का मूलमंत्र हमारी भावनाओं में गहराई से रचा-बसा है।

वैचारिक रूप से मतभिन्नता संभव है और होनी भी चाहिए, परंतु सांस्कृतिक स्वर हमारी रगों में बहता है, कण-कण में रमता है और व्यवहार में दृष्टिगोचर होता है। भारत की युवा पीढ़ी इस सत्य और तथ्य से सुपरिचित है, बस, उसे दृढ़ संकल्प के साथ क्रियान्वयन करने की आवश्यकता है। इसी आधार पर हम कह सकते हैं, हम विश्व का सक्षम एवं समर्थ रूप से नेतृत्व कर सकते हैं। ❑

एक धनी व्यक्ति का एकमात्र पुत्र था, पर ज्यादा लाड़-प्यार के कारण वह बिगड़-सा गया था। उसको सीख देने के लिए उसके पिता ने एक युक्ति लगाई। उन्होंने उसे बुलाकर कहा—''अब से जब तक तुम कमाकर नहीं लाओगे, तब तक खाना नहीं मिलेगा।'' लड़का बड़ा घबराया और अपनी माँ के पास गया। माँ को उसकी स्थिति पर दया आ गई और उन्होंने उसे एक रुपया दे दिया।

उसने वह रुपया लाकर पिता को दिया तो उसके पिता बोले—''जा, इसे कुएँ में फेंक आ।'' लड़का खुशी-खुशी गया और पैसे को कुएँ में फेंक आया। अगले दिन भी उसके पिता ने उसे ऐसा ही कहा तो वह फिर अपने मामाजी से एक रुपया माँग लाया, उस रुपये को भी उसके पिता ने कुएँ में फिंकवा दिया। तीसरे दिन भी उसके पिता ने उसे वैसा ही करने को कहा तो वह अपने चाचाजी के पास से एक रुपया माँग लाया, परंतु उसके पिता ने वह रुपया भी कुएँ में फिंकवा दिया।

एक हफ्ते तक ऐसा ही क्रम चला। फिर संबंधियों को उसकी याचना पर दया आनी बंद हो गई तो वह अंततः मेहनत करने निकला। कड़ी मेहनत करने के पश्चात उसे चवन्नी मिली तो वह उसे लेकर पिता के समक्ष प्रस्तुत हुआ तो उन्होंने उसे वह पैसे कुएँ में फेंकने को कहा। यह सुनकर लड़का बड़े अनमने भाव से बोला—''पिताजी! मैं इतनी मेहनत करके पैसे लाया हूँ और आप इसे फेंकने को कहते हैं।'' यह सुनकर उसका पिता मुस्कराया और उसने अपने पुत्र को हृदय से लगा लिया और उससे बोले—''पुत्र! अब तुझे परिश्रम से कमाये धन का मूल्य समझ में आ गया। अब तू मेरा व्यापार सँभाल सकता है।'' स्व-उपार्जित धन का मूल्य ही कुछ और होता है।

जो मर्म को छू जाए, वही शिष्टाचार है

शिष्ट आचरण और सद्व्यवहार से शिष्टाचार बनता है। जब हम अपने भाव एवं विचार में पावन एवं श्रेष्ठ होते हैं तो हमारा आचरण स्वाभाविक रूप से शिष्टाचार से ओत-प्रोत हो जाता है। शिष्टता मानव जीवन का सौंदर्य है। इसका संबंध गहन स्वाध्याय, परम अनुशीलन, कठोर साधना और विद्यानुराग से है। विपरीत परिस्थितियों में अपने अस्तित्व को बचाए रखना शिष्टता के कारण संभव हो पाता है।

शिष्टता प्रतिभा का एक अंतर्निहित नैसर्गिक तत्त्व है। इसे संरक्षित करके भविष्य के लिए पोषक बनाना बार-बार के अभ्यास से आता है। निंदा-स्तुति की चिंता किए बिना शिष्टता अपने लक्ष्य की ओर बढ़ती है। मूल्यांकन करने के लिए कठोर तप का संदर्भ मूल्यवान बनाता है। जो जितना अधिक श्रेष्ठ रहता है, वह उतनी गहराई से पारदर्शिता की अनुभूति करता है।

किसी के मन का वास्तविक अध्ययन करने के लिए अंतर्मन की दृष्टि, परोपकारी वृत्ति और सरलता ही मूल आधार होते हैं। निर्मल दर्पण में ही पारदर्शी स्वरूप दिखाई पड़ता है। कवि भवभूति ने लिखा कि मेरी रचनाओं का उद्देश्य विद्वानों की सूची में सम्मिलित होना नहीं है। यह आवश्यक नहीं है कि लोग मुझे श्रेष्ठ विद्वान कहें। मुझे विश्वास अवश्य है कि मेरी तरह जब भी भविष्य में जो कोई जन्म लेगा तो वह अवश्य मेरे साहित्य को कुछ समझने का सार्थक प्रयास करेगा।

पीटरवर्ग के अनुसार परिश्रम का परिणाम इच्छित समय पर नहीं मिलता। इसके लिए एक नियत समय होता है। मनोवांछित समय में देर होने पर इच्छा से बड़े फल की संभावना बढ़ जाती है। वे आगे कहते हैं—फलप्राप्ति के लिए परम धैर्य धारण करना शिष्टता की श्रेणी में गिना जाता है। सम्यक नीर-क्षीर-विवेक का मूल्यांकन करना वही जानते हैं, जिनकी दृष्टि सत्य, न्यास से युक्त रहती है।

शिष्टता विनम्रता का ही एक रूप है। यह उत्तम ज्ञान एवं विद्या प्रदान करती है। शिक्षा शिष्टता के लिए उतनी उपादेय नहीं है, जितनी विद्या। जब विद्या की शिष्टता जीवन को आत्मसात् करने लगती है, तब जीवन विकसित होने लगता है। असाधारण स्मरणशक्तियाँ, बुद्धि की कुशाग्रता ही शिष्टता को समृद्ध बनाती हैं। प्रेम और करुणा के बिना शिष्टता का विकास संभव नहीं है। असाधारण व्यक्तित्व कोहिनूर जैसी चमक बिखेरता है। इस हीरे पर जिस रंग की रश्मि पड़ती है, उसे वह सौ गुना अधिक तेजी से प्रतिभासित करता है।

अच्छे के साथ सभी लोग अच्छे रहते हैं, पर बुरे के साथ अच्छे बने रहने पर इतिहास बनता है। सहनशीलता से जीवन में असाधारण परिवर्तन होता है। शिष्टाचार, विनम्रता एवं शालीनतापूर्ण आचरण ही वह आभूषण है, जो मनुष्य को आदर व सम्मान दिलाता है। शिष्टाचार व्यवहार का माध्यम है। इसी आधार पर सभ्यता एवं संस्कृति का भवन निर्माण होता है। एकदूसरे के प्रति सद्भावना, सहानुभूति व सहयोग आदि शिष्टाचार के मूल आधार हैं।

शिष्टाचार का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। शिष्टाचार संबंधों में मधुरता एवं स्थायित्व प्रदान करता है। बड़ों का यथोचित सम्मान एवं छोटों के प्रति स्नेहिल प्यार करना चाहिए। इसी शिष्टाचार का सदैव पालन करना चाहिए। ❑

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—174

मनोआध्यात्मिक उपचारों का चिंता एवं अवसाद पर प्रभाव

पिछले दशक से लेकर अब तक यदि देखा जाए तो भारत सहित पूरी दुनिया में इंटरनेट के उपयोग में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। शिक्षा, संचार, व्यवसाय, प्रबंधन, शोध-अनुसंधान के क्षेत्र व ज्ञान-विज्ञान की सुलभ जानकारी की दृष्टि से इंटरनेट का महत्त्व भी अत्यधिक हो गया है, परंतु इसके दुरुपयोग ने अनेक तरह की समस्याओं को भी उत्पन्न कर दिया है।

व्यक्ति किसी आवश्यकता की दृष्टि से इंटरनेट का उपयोग प्रारंभ करता है, लेकिन कब इसकी आदत व्यसन का रूप लेकर समस्या बन जाती है, यह समझ पाना मुश्किल है। इंटरनेट का व्यसन बच्चों से लेकर हर आयु-वर्ग के लोगों में सहज देखा जा सकता है।

यह हमारे आधुनिक समाज की एक विकट समस्या बन चुकी है। मनोवैज्ञानिकों ने इस समस्या पर गंभीर चिंता व्यक्त करते हुए तथ्यात्मक रूप से यह समझाने का प्रयास किया है कि इंटरनेट पर अधिक समय बिताना अनेक प्रकार की मनोशारीरिक समस्याओं को जन्म दे रहा है। सोशल मीडिया का अधिक प्रयोग भी व्यक्ति के मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर रहा है।

इंटरनेट के बेतहाशा उपयोग और इससे उत्पन्न समस्याओं को लेकर विश्व भर में अनेक शोधकार्य किए जा रहे हैं। विशेषज्ञों की मान्यता है कि इंटरनेट की आभासी दुनिया मनुष्य को उसके जीवन की वास्तविक स्थिति से भटका देती है, जिसके फलस्वरूप उसके निजी और सामाजिक जीवन में गंभीर समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं।

तनाव, चिंता, असुरक्षा, अवसाद, कुंठा, निराशा, आत्मसम्मान की कमी और कुसमायोजन जैसी मनोवैज्ञानिक समस्याओं का एक बड़ा कारण इंटरनेट का ज्यादा प्रयोग करना है। यह समस्या और ज्यादा गंभीर तब हो जाती है, जब बच्चे और युवाओं को बुरी तरह इसकी गिरफ्त में देखते हैं।

विडंबना यह है कि किसी भी स्तर पर ऐसा कोई तंत्र अभी नहीं है, जो इंटरनेट का उपयोग कब, कैसे, कितना करना है, इस बात का प्रशिक्षण देता हो। साथ ही इंटरनेटजनित अर्थात साइबर उपभोक्ताओं की समस्याओं के समाधान की कोई समुचित उपचार-विधि भी मौजूद नहीं है।

ऐसे में आवश्यकता है कि इंटरनेट की आभासी दुनिया का व्यसन न विकसित हो, इसके प्रति सजगता और जो समस्या उत्पन्न हो चुकी है, उसका जीवनशैली में आवश्यक सुधार कर समाधान प्राप्त करना। सजगता और समाधान के इन दोनों पहलुओं को समाहित करते हुए एक विशिष्ट शोधकार्य देव संस्कृति विश्वविद्यालय के योगविज्ञान विभाग के अंतर्गत संपन्न किया गया है।

यह शोध अध्ययन वर्ष—2019 में शोधार्थी कृष्णा अग्रवाल द्वारा विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं प्रो० हेमाद्रि कुमार साव के निर्देशन में पूरा किया गया है।

इस शोधकार्य का विषय है—**'पं० श्रीराम शर्मा आचार्य द्वारा प्रतिपादित मनो-आध्यात्मिक अभ्यासों का साइबर प्रयोक्ताओं (साइबर**

यूजर्स) के चिंता एवं अवसाद स्तर पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन।'

प्रयोगात्मक एवं वैज्ञानिक रीति से संपन्न किए जाने वाले इस शोधकार्य के प्रयोग हेतु शोधार्थी द्वारा भारत के चार शहरों—हरिद्वार, ऋषिकेश, मेरठ और दिल्ली से आकस्मिक प्रतिचयन विधि द्वारा 100 ऐसे साइबर यूजर्स (इंटरनेट प्रयोक्ता) को चयनित किया गया, जिनकी उम्र 18 से 40 वर्ष के बीच थी, शिक्षा न्यूनतम हाईस्कूल थी तथा जो कम-से-कम 5 से 6 घंटे या इससे अधिक घंटे इंटरनेट पर व्यतीत करते थे।

इन चयनितों को पुनः दो समूह में वर्गीकृत किया गया। पहले समूह में जिनमें चिंता की समस्या थी एवं दूसरे समूह में अवसादग्रस्त प्रयोक्ताओं को रखा गया। दोनों समूहों में स्त्री-पुरुषों की संख्या समान रखी गई। प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व सभी चयनित लोगों का शोध उपकरणों की सहायता से स्वास्थ्य परीक्षण किया गया।

शोधार्थी द्वारा जिन शोध उपकरणों को प्रयुक्त किया गया; वे हैं—सिन्हा काम्प्रिहेन्सिव एन्जायटी टेस्ट (SCAT)—यह ए०के० सिन्हा (1971) द्वारा निर्मित टेस्ट है। दूसरा—गौरव अग्रवाल द्वारा निर्मित (2010) पर्सनल असेसमेंट इन्वेन्ट्री (IPAT)। परीक्षण के उपरांत छह माह की अवधि तक शोधार्थी द्वारा दोनों समूहों को मनो-आध्यात्मिक अभ्यास की चिकित्सा प्रदान की गई।

प्रथम समूह (चिंताग्रस्त साइबर प्रयोक्ता) के लिए मनो-आध्यात्मिक अभ्यास के अंतर्गत जिन यौगिक तकनीकों को सम्मिलित किया गया है, वे हैं—

(i) आत्मबोध साधना—प्रतिदिन जागरण के साथ,

(ii) प्रार्थना—प्रतिदिन 10 मिनट प्रातःकाल 6 बजे;

(iii) प्रज्ञायोग—10 मिनट (तीन आवृत्ति प्रतिदिन),

(iv) प्राणाकर्षण प्राणायाम—10 मिनट (5 आवृत्ति प्रतिदिन),

(v) अमृतवर्षा रसानुभूति ध्यान—15 मिनट,

(vi) तत्त्वबोध साधना—प्रतिदिन शयन से पूर्व। इसके साथ सप्ताह में एक बार (प्रति रविवार) आध्यात्मिक परामर्श।

द्वितीय समूह (अवसादग्रस्त साइबर प्रयोक्ता) के लिए मनो-आध्यात्मिक अभ्यास के अंतर्गत जो यौगिक तकनीकें चयनित की गई थीं; वे हैं—

(i) प्रार्थना—प्रातःकाल 10 मिनट,

(ii) प्रज्ञायोग—10 मिनट (तीन आवृत्ति),

(iii) प्राणाकर्षण प्राणायाम—10 मिनट (5 आवृत्ति),

(iv) आध्यात्मिक परामर्श—15 मिनट सप्ताह में एक बार प्रति रविवार।

प्रयोग की अवधि पूर्ण होने पर शोधार्थी द्वारा पूर्व की भाँति पुनः दोनों समूहों के साइबर यूजर्स का शोध उपकरणों की सहायता से स्वास्थ्य परीक्षण किया गया। दोनों परीक्षणों से प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर परिणाम रूप में यह पाया गया कि चिंता एवं अवसादग्रस्त साइबर प्रयोक्ताओं पर चयनित मनो-आध्यात्मिक अभ्यास का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है एवं उनके चिंता स्तर एवं अवसाद स्तर में सार्थक कमी आती है।

अतः इस शोध निष्कर्ष के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रतिपादित यौगिक विधियाँ, जिन्हें शोधार्थी द्वारा मनो-आध्यात्मिक अभ्यास के अंतर्गत सम्मिलित किया गया है, इनके नियमित अभ्यास की इंटरनेट के व्यसनी हो चुके लोगों की मानसिक समस्याओं के सार्थक एवं समुचित समाधान में महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है।

इस महत्त्वपूर्ण एवं सामयिक दृष्टि से अत्यधिक उपादेयी शोध अध्ययन का सबसे विशिष्ट व उल्लेखनीय पक्ष है—शोध हेतु चयनित मनो-आध्यात्मिक अभ्यास की यौगिक एवं आध्यात्मिक तकनीकें। ये सभी तकनीकें एकाकी रूप से भी विशिष्ट हैं तथा व्यक्ति के संपूर्ण जीवन को सकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाली हैं।

इस अध्ययन की पहली तकनीक है—आत्मबोध, तत्त्वबोध साधना। यह आचार्य श्रीराम शर्मा द्वारा प्रतिपादित जीवनशैली प्रबंधन की एक प्रभावी एवं सर्वसुलभ विधि है। योग, साधना आदि की दृष्टि से तो इसका महत्त्व है ही, साथ ही सामान्य जीवन में भी प्रत्येक दिन को अधिक सार्थकता, सजगता और कर्त्तव्यनिष्ठ होकर जीने तथा तनावमुक्त बने रहने में भी आत्मबोध, तत्त्वबोध साधना का नियमित अभ्यास अत्यंत सहायक होता है। अपने एक दिन के जीवन का श्रेष्ठतम व सार्थक उपयोग ही इस साधना का मर्म है।

आत्मबोध-तत्त्वबोध का साधक भविष्य की चिंता से मुक्त हो जाता है; क्योंकि वह अपने दैनिक कार्यों-कर्त्तव्यों को सम्यक व कुशलतापूर्वक करने में विश्वास करता है साथ ही स्वयं व परिस्थितियों के प्रति सजग बना रहता है। उसमें समझ, आत्मविश्वास और सकारात्मकता जैसे गुण विकसित हो उठते हैं। फलस्वरूप वह जीवन के अंत:बाह्य पक्षों में आसानी से समायोजन कर पाता है।

दूसरी तकनीक 'प्रार्थना' है। प्रार्थना चिंतामुक्त जीवन जीने में सहायक एक प्रभावी एवं सर्वसुलभ साधना है। प्रार्थना में व्यक्ति अपने मनोभावों को पूर्ण समर्पण के साथ परमात्मा के समक्ष बड़ी ही सहजता से प्रकट कर देता है। प्रार्थना की तकनीक में आंतरिक भावनाओं की प्रबलता होती है। भावनात्मक परिष्कार से चिंतन भी शुद्ध और सकारात्मक बनता है, जिसका सीधा प्रभाव व्यक्ति के कर्म, व्यवहार एवं आचरण पर पड़ता है।

पूज्य गुरुदेव के अनुसार प्रार्थना चिंतन, चरित्र और व्यवहार के रूपांतरण की अद्भुत प्रक्रिया है। नियमित प्रार्थना के अभ्यास से जीवन के समस्त तनावों व मनोविकारों से सहज मुक्ति मिल जाती है। यौगिक चिकित्सा के क्षेत्र में प्रार्थना को जीवनी शक्ति बढ़ाने तथा उच्च रक्तचाप, माइग्रेन, व्यसन, विषाद, चिंता आदि गंभीर बीमारियों के उपचार में अत्यंत कारगर उपाय माना जाता है।

प्रज्ञायोग व्यायाम इस अध्ययन की तीसरी तकनीक है। यह पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रतिपादित 16 चरणों के व्यायाम की एक समग्र योगाभ्यास विधि है। इसमें आसन, मुद्रा, प्राणायाम, मंत्र एवं ध्यान जैसी विशिष्ट योग-क्रियाओं का अद्भुत समन्वय है। इसका नियमित अभ्यास शरीर के व्यायाम के साथ ही मन की एकाग्रता-प्रखरता और भावनात्मक पवित्रता को भी विकसित करता है।

प्रज्ञायोग में गायत्री मंत्र का अभ्यास और सविता सूर्य का ध्यान भी जुड़ा है, जिसके फलस्वरूप अभ्यासकर्त्ता में तेजस्विता, प्रखरता और उत्साह का संचार होता है। यह सर्वविदित है कि गायत्री मंत्र सद्बुद्धि और विवेक-जागरण का मंत्र है, अत: यह व्यक्ति के समस्त नकारात्मक चिंतन को दूर कर विवेक एवं आंतरिक सजगता के विकास में अत्यंत सहयोगी होता है।

परमपूज्य गुरुदेव द्वारा प्रवर्तित प्राणाकर्षण प्राणायाम इस शोध के मनो-आध्यात्मिक अभ्यास की चतुर्थ विशेष तकनीक है। प्राणायाम एक प्रकार का विशेष योगाभ्यास है, जिसमें श्वास-प्रश्वास की गति पर नियंत्रण और संतुलन का अभ्यास किया जाता है। इसके अभ्यास से शारीरिक स्वास्थ्य की प्राप्ति, मन में सकारात्मकता का विकास तथा

चिंता, अवसाद जैसी मनोदशा से मुक्ति में सहायता प्राप्त होती है।

वैज्ञानिक विश्लेषणों में यह पाया गया है कि प्राणाकर्षण प्राणायाम का नियमित अभ्यास व्यक्ति के अनुकंपी एवं परानुकंपी तंत्रिका तंत्र में संतुलन स्थापित कर तनाव व अवसाद स्तर को घटाने का प्रभावी एवं कारगर उपाय है। इसके साथ ही प्राणायाम से शरीर में डोपामीन, एंडोर्फिन, सिरोटोनिन इत्यादि हॉर्मोन्स का स्राव होने से मन में उत्साह, प्रसन्नता और सकारात्मकता की वृद्धि होती है।

अध्ययन की पाँचवीं तकनीक है—अमृतवर्षारसानुभूति ध्यान। यह पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रतिपादित एक विशेष ध्यान-प्रक्रिया है, जो व्यक्ति के मनःसंस्थान और भाव-क्षेत्र को सकारात्मक रूप से उद्वेलित कर विकसित बनाती है। इसे सूक्ष्म एवं कारणशरीर की साधना भी कहा जाता है।

इस ध्यान-साधना के अभ्यास में साधक स्वयं को परमात्मा के प्रति समर्पित करते हुए यह भावना करता है कि ईश्वर का असीम स्नेह, करुणा, कृपा, आशीर्वाद और अनंत ऊर्जा अमृतरूप में बरस रहे हैं और समूचा अस्तित्व इस अमृतवर्षा की अनुभूति से ओत-प्रोत हो रहा है। मनोभावों की पवित्रता, रूपांतरण और ऊर्ध्वगमन इस ध्यान-साधना का मूल उद्देश्य है। यह अभ्यास आंतरिक विकारों के समाधान तथा मनो-आध्यात्मिक क्षमताओं के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अध्ययन की अंतिम तकनीक है—आध्यात्मिक परामर्श। यह चिंता और अवसाद जैसी गंभीर मनोव्याधि के उपचार में एक प्रभावी एवं समर्थ विधि है। इस विधि में एक परामर्श विशेषज्ञ धैर्यपूर्वक समस्याग्रस्त व्यक्ति की समस्या को सुनता है एवं उसे स्वयं के समाधान प्राप्त कर सकने हेतु आवश्यक सुझाव, परामर्श एवं मार्गदर्शन प्रदान करता है।

आध्यात्मिक परामर्श में आध्यात्मिक सिद्धांत कार्य करते हैं। अध्यात्म का पहला सिद्धांत है—सकारात्मकता। कर्मफल के अनुसार ही जीवन में परिवर्तन घटित होते हैं, अतः हमेशा सन्मार्ग, सच्चिंतन, सत्कर्म और सद्व्यवहार का अभ्यास ही इसकी मूल प्रेरणा है।

दूसरा सिद्धांत है—परमात्मा एवं उसके विधान में पूर्ण विश्वास। जो भी जीवन में घटित होता है, वह सब कल्याणकारी ही है—यह भावना ईश्वरीय विधान और ईश्वरीय कृपा के प्रति दृढ़ विश्वास उत्पन्न करती है।

इस शोध अध्ययन के निष्कर्ष से यह स्पष्ट है कि पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रतिपादित जिन तकनीकों को शोधार्थी ने मनो-आध्यात्मिक अभ्यास के रूप में इस प्रयोग में सम्मिलित किया है, वे इंटरनेट के व्यसन से उत्पन्न मानसिक समस्याओं के समुचित समाधान का कारगर उपाय हैं। साथ ही जीवनशैली को संतुलित एवं विकसित कर व्यक्ति को संपूर्ण स्वास्थ्य और विकसित एवं उत्कृष्ट जीवन स्तर प्रदान करने में भी ये एक समर्थ एवं लाभकारी उपाय हैं। ❑

स्वामी रामकृष्ण परमहंस से शिष्यों ने पूछा—"महाराज! भक्ति क्या है?"

स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने उत्तर दिया—"भक्ति अर्थात मन, वाणी और कर्म से भगवान को पुकारना। कर्म अर्थात हाथों से उनकी पूजा और सेवा करना, पैरों से उनके स्थानों तक जाना, कानों से भगवान और उनके नाम, गुणों और भजनों को सुनना, आँखों से उनकी मूर्ति के दर्शन करना। मन अर्थात सदा उनका ध्यान, उनकी चिंता करना और उनकी लीलाओं का स्मरण करना। वाणी अर्थात उनकी स्तुतियाँ पढ़ना- उनके भजन गाना। जब तीनों मिलकर भगवान को पुकारते हैं, तभी भक्ति सार्थक हो पाती है।"

कठिन समय का सामना कुछ ऐसे करें

यह जीवन ईश्वर का एक अद्भुत उपहार है, जो परिस्थितियों के जटिल चक्रव्यूह से होकर आगे बढ़ता रहता है, जिसमें कभी खुशी तो कभी गम, कभी हार तो कभी जीत, कभी उतार तो कभी चढ़ाव आते रहते हैं।

घटनाक्रमों के इन सिलसिलों के बीच कठिन एवं विकट पल भी आते हैं, जब जीवन दूभर हो जाता है। यदि व्यक्ति ऐसे समय में नहीं सँभला तो उसको टूटते-बिखरते देर नहीं लगती, लेकिन यदि सही समझ व धैर्य के साथ इसका सामना किया जाए, तो यही विषम पल व्यक्ति के उत्कर्ष का माध्यम बन जाते हैं और जीवन के उच्चतर सत्य की ओर ले जाते हैं।

जीवन के विकट पल हमारे लिए उत्थान व उत्कर्ष का अवसर बनें, इसके लिए कुछ बातों का ध्यान रखना आवश्यक हो जाता है। जिसमें सर्वप्रथम है परिस्थिति को स्वीकार करना। जो भी विकट घटना या जीवन के कठिन पल हैं, उन्हें स्वीकार करें। इसे ईश्वर का दिया हुआ उपहार मानें या अपने कर्मों से जुड़ा गहन रहस्य समझें, जो जीवन की नई समझ देने के लिए आया है।

इस समझ व स्वीकृति के साथ ही संघर्ष की नई ऊर्जा का संचार होता है। विकट परिस्थिति को अपनी नियति का एक हिस्सा मानते ही चुनौती के रूप में आभासित पल आगे बढ़ने के अवसर बन जाते हैं। इन कठिन पलों में अपनों का संग-साथ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

अपने परिवारजनों, मित्रों व शुभचिंतकों का संग इन पलों से उबरने में निर्णायक भूमिका निभाता है। इनसे प्राप्त भावनात्मक सिंचन जीवन की कली को मुरझाने नहीं देता, इनका सहारा टूटने-बिखरने के कगार पर खड़े अस्तित्व को सँभाले रहता है, लेकिन दूसरों के सहारे ही जीवन की नैया पार होगी, ऐसी भी गलतफहमी नहीं पाली जा सकती। जीवन का सामना अंतत: अपने दमखम पर ही करना होता है और दूसरों के साथ की अपनी सीमा रहती है।

इसके लिए स्वयं को समय देना अभीष्ट हो जाता है। कठिन समय में जीवन के बिखरने व टूटने का खतरा रहता है, ऐसे में अपने तन-मन व जीवनचर्या पर आवश्यक ध्यान रखें। उचित आहार-विहार, शारीरिक सक्रियता, विश्राम एवं नींद का सहारा लें। शरीर के साथ मन का श्रेष्ठ नियोजन करें। अपने कर्त्तव्य कर्मों में निमग्न रहें।

ये सब अनावश्यक तनाव-अवसाद से बचाए रखते हैं। नियमित कागज पर अपने मनोभावों को लिखने का अभ्यास करें। इनके साथ मन का गुबार बाहर निकलता है तथा चित्त का बोझ हलका होता और आप बेहतर अनुभव करते हैं। प्रकृति की गोद में कुछ समय अवश्य बिताएँ, जो मन की शांति-स्थिरता के लिए संजीवनी का काम करता है।

साथ ही जीवन के अर्थ व उद्देश्य को तलाशें, जो व्यक्ति को जीवन की गहराइयों में प्रतिष्ठित करता है और एक सार्थकता की अनुभूति के साथ मनोबल व आत्मबल के अनुदान दे जाता है। इसके लिए नियमित रूप से आत्मनिरीक्षण से लेकर आत्मसुधार एवं निर्माण का न्यूनतम कार्यक्रम निर्धारित करें। दैनिक क्रियाकलापों में अपनी रुचियों को स्थान दें।

ये जीवन में एक नया रस व रंग घोलने का काम करते हैं। नित्य इनके लिए कुछ समय अवश्य दें, ये जीवन में एक नई ताजगी व उल्लास भरने वाले उपक्रम साबित होंगे। इसके साथ स्वयं को सतत प्रेरित रखें। श्रेष्ठ पुस्तकों को पढ़ें व प्रेरक लोगों की संगत तलाशें। एक समय एक कदम उठाएँ तथा जीवन की छोटी-छोटी विजय को हासिल करते चलें। ये जीवन के प्रति आशा व उत्साह से लबरेज रखने का माध्यम बनेंगे।

जीवन को अत्यधिक गंभीरता से न लें तथा स्वयं के प्रति उदारता का भाव रखें। साथ ही दूसरों के प्रति कृतज्ञता का भाव अपनाएँ। ये सब जीवन को सरस-सुखद बनाए रखने में सहायक बनते हैं। साथ ही कठिन दौर में कुछ बातों को याद रखें। आप पहले भी ऐसी व इससे भी कठिन परिस्थितियों को पार कर चुके हैं और आप पुनः इससे बाहर निकल जाएँगे।

इस समय आप कितना भी बदतर क्यों न अनुभव कर रहे हों, यह समय हमेशा ऐसा नहीं रहने वाला और विश्वास रखें कि आप वर्तमान समस्या से अधिक महान हैं, अधिक विराट एवं शक्तिशाली हैं। यह भी मानकर चलें कि मन की शांति पर डाका डालने वालों में सबसे बड़ा खलनायक काल्पनिक भय रहता है। भय के साथ कल्पित 90 प्रतिशत बातें कभी घटित नहीं होतीं। अतः मन की इस माया को समझें व कल्पित भय पर काबू पाने की कोशिश करें।

नकारात्मक अनुभवों को जीवन का अभिन्न हिस्सा मानें, इन्हें स्वीकार करें। उदासी, क्रोध, हताशा-निराशा, आक्रोश, ईर्ष्या, आहत होने का भाव, वियोग-विछोह, शोक जैसे भाव जीवन के अभिन्न सहचर हैं, जो आते-जाते रहते हैं। इनके बीच आत्मश्रद्धा की लौ जगाए रखने का अभ्यास करें।

इसके लिए ध्यान से लेकर प्रार्थना जैसे आध्यात्मिक उपचारों का सहारा ले सकते हैं। इनके साथ परिस्थितियों की मार कुंद पड़ जाती है। वस्तुतः श्रद्धा जीवन की समस्याओं को समाप्त नहीं करती, बल्कि उनको देखने का दृष्टिकोण बदल देती है और उनको रूपांतरित कर देती है।

अंततः यह याद रखें कि विकट पल आपको नष्ट करने के लिए नहीं, बल्कि आपको गढ़ने के लिए आते हैं, जो आपको कुछ नए अनुभव, जीवन के कठिन सबक सिखाने आते हैं। साथ ही कुछ विशिष्ट अनुदान देकर जाते हैं, जिनसे अन्यथा आप वंचित ही रह जाते।

कठिन पलों का गहन विश्लेषण करते हुए आप यदि उन्हें अपने कर्मों से जोड़कर देख सकें, तो यह सहज ही समझ आएगा कि ये महान शिक्षक के रूप में हमारे जीवन में आते हैं। परमपिता परमात्मा की इच्छा-आशीर्वचन सब इनसे जुड़े हुए रहते हैं। ये विकट-विषम पल आवश्यक सीख व समझ देकर आगे निकल जाते हैं तथा हर पल हमेशा साथ नहीं रहते। ❑

स्थितां सत्येन धरणी सत्ये नैव च वारिधिः।
सत्येन जलधाराश्च सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्॥

अर्थात सत्य पर ही धरती टिकी है, समुद्र भी सत्य के कारण ही अपनी मर्यादा में स्थित है और सत्य के कारण ही सभी जलधाराओं में जल है। सत्य में ही सब कुछ स्थित और प्रतिष्ठित है।

राजसी दान का अर्थ

(श्रीमद्भगवद्गीता के श्रद्धात्रयविभागयोग नामक सत्रहवें अध्याय की बीसवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के बीसवें श्लोक पर चर्चा इससे पूर्व की किस्त में की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान सात्त्विक दान के विषय में अर्जुन को बताते हुए कहते हैं कि जो दान देश, काल और पात्र के प्राप्त होने पर अनुपकारी को निष्काम भाव से, ऐसे भाव के साथ कि दान देना हमारा कर्त्तव्य है—दिया जाता है तो वह दान सात्त्विक कहलाता है। सात्त्विक दान का संबंध त्याग के भाव के साथ है और ऐसा दान ही हमारे संसार के साथ संबंधों के विच्छेद का आधार बनता है अथवा यों कहें कि मुक्ति के भाव को प्रगाढ़ करता है। यहाँ जब भगवान सात्त्विक दान को परिभाषित करते हैं तो उसकी परिभाषा देते समय वे कहते हैं कि सात्त्विक दान दो दृष्टियों से परिभाषित होता है। प्रथम दान को व्यक्ति अपना दायित्व मानकर करे। जितना हमारे लिए आवश्यक था, वह हम रखें—शेष को अपना न मानते हुए जरूरतमंद को देने का भाव—सात्त्विक दान का पहला आधार है। वह दान देने से मुझे प्रत्युत्तर में क्या मिलेगा, जिसे दान दिया गया है, वो मुझ पर उपकार करेगा या नहीं करेगा—इन सबकी चिंता किए बगैर जो दान दिया जाता है, वह दान सात्त्विक दान कहलाता है। अनुपकारी को देने का यह अर्थ नहीं कि उपकारी को न दिया जाए, वरन उसका अर्थ यह है कि उपकार की आकांक्षा किए बिना दान दिया जाए।

इसके अतिरिक्त सात्त्विक दान का दूसरा लक्षण है कि जिस देश में जो वस्तु नहीं है और वहाँ उस वस्तु की आवश्यकता है तो वहाँ उस वस्तु को दे देना, साथ ही जिस समय जिस वस्तु की आवश्यकता है, उस समय उस वस्तु को दे देना एवं जिसके पास जो वस्तु नहीं है, उस अभावग्रस्त को वह वस्तु दे देना। इन गुणों के पूर्ण होने पर भगवान कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि वो दान सात्त्विक दान बन जाता है।]

इसके बाद भगवान कृष्ण अपना अगला सूत्र कहते हैं कि

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम्॥21॥

शब्दविग्रह—यत्तु, तु, प्रत्युपकारार्थम्, फलम्, उद्दिश्य, वा, पुनः, दीयते, च, परिक्लिष्टम्, तत्, दानम्, राजसम्, स्मृतम्।

शब्दार्थ—किंतु (**तु**), जो (दान) (**यत्**), क्लेशपूर्वक (**परिक्लिष्टम्**), तथा (**च**), प्रत्युपकार के प्रयोजन से (**प्रत्युपकारार्थम्**), अथवा (**वा**), फल को (**फलम्**), दृष्टि में रखकर (**उद्दिश्य**), फिर (**पुनः**), दिया जाता है (**दीयते**), वह (**तत्**), दान (**दानम्**), राजस (**राजसम्**), कहा गया है (**स्मृतम्**)।

अर्थात जो दान क्लेशपूर्वक और प्रत्युपकार के लिए अथवा फलप्राप्ति का उद्देश्य बनाकर दिया जाता है, वह दान राजसिक दान कहलाता है। वह दान जिसमें प्रत्युपकार की भावना निहित होती

है अर्थात देते समय कहीं मन में यह भाव होता है कि आज हम इस व्यक्ति की सहायता कर रहे हैं, इसे कुछ दे रहे हैं तो यह भी हमारी सहायता करे, सहयोग करे। क्लेशपूर्वक देने का अर्थ है कि देते समय आंतरिक आनंद का भाव नहीं होता, बल्कि व्यक्ति उसे मन मसोसकर, येन-केन प्रकारेण पूर्ण करना चाहता है।

कठोपनिषद् में नचिकेता की कथा आती है। नचिकेता के पिता आरुणि उद्दालक ने एक विशाल यज्ञ का आयोजन किया। यज्ञ का आयोजन करते समय उन्होंने संकल्प लिया कि यज्ञ सफलतापूर्वक संपन्न हो जाएगा तो वे सौ गायें दान में देंगे। यज्ञ के सफलतापूर्वक संपन्न होने पर जब दान देने का समय आया तो उन्होंने चुन-चुनकर वे गायें देनी आरंभ कीं, जो न दुग्ध दे सकती थीं और साथ ही वंध्य भी थीं।

यह दृश्य देखकर नचिकेता ने पिता से प्रश्न किया—''पिताजी! यह तो शास्त्रोक्त दान नहीं है। दान देने का उचित अर्थ तो तब निकलता है, जब शुभ वस्तु का दान शुभ उद्देश्य से उचित पात्र को किया जाए। आप तो वे गायें दान में दे रहे हैं, जो प्राप्त करने वाले के लिए किसी मूल्य की नहीं हैं।''

पुत्र के वचन सुनकर पिता के मन में क्रोध आया और क्रोध में उनके मुख से यह वचन निकला कि नचिकेता! तुम्हीं मेरे लिए सबसे ज्यादा मूल्य के हो, मैं तुम्हें ही मृत्यु के देवता यम को दान देता हूँ। पिता के वचन सुनते ही नचिकेता तुरंत यम के घर के लिए प्रस्थान कर गए।

यम के निवास पर पहुँचने पर उन्होंने पाया कि वे वहाँ नहीं हैं। तीन दिन-तीन रात्रि उन्होंने वहाँ प्रतीक्षा की। जब यम वापस लौटे तो किशोर नचिकेता को वहाँ देख उन्होंने उसके वहाँ आने का कारण पूछा। पूरा प्रकरण पता चलने पर यम नचिकेता के समर्पण भाव के प्रति अनुरक्त हुए एवं नचिकेता से बोले—''मैं तुम्हारे समर्पण भाव को देखकर अत्यंत आह्लादित हूँ। तुमने तीन दिन एवं तीन रात जिस भाव से मेरी प्रतीक्षा की है, उसके प्रत्युत्तर में मैं तुम्हें तीन वरदान प्रदान करता हूँ। जो तुम्हारी इच्छा हो, वो तुम माँग लो।''

नचिकेता ने प्रत्युत्तर में यम से पिता के लिए क्षमादान की याचना करी। यह कहा कि जाने- अनजाने उनसे जो भी भूल हो गई हो, उसका पाप उन्हें न लगे। दूसरे वरदान के रूप में उन्होंने यज्ञ के विज्ञान का रहस्य जानना चाहा और तीसरे वरदान के रूप में उन्होंने अध्यात्म विद्या का मर्म जानने की इच्छा व्यक्त की। दोनों के मध्य का यह संवाद ही कठोपनिषद् के नाम से जाना जाता है।

जिस तरह के दान को देने का भाव नचिकेता के पिता के मन में आया, वो राजसी दान है, उसमें क्लेशयुक्त भाव सन्निहित हैं। सात्त्विक दान में देने वाले के हृदय में कर्त्तव्य और दायित्व का बोध होता है। कर्त्तव्य का अर्थ यह नहीं कि हम उसे बोझ समझकर जबरदस्ती कर रहे हैं, वरन कर्त्तव्य शब्द का अर्थ इस भाव से है कि उस कार्य को करना जिसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी करने योग्य नहीं रह जाता। इसलिए सात्त्विक दान अंदर के आनंद के फलस्वरूप प्रवाहित होता है। उसमें दान देने वाला, दान पाने वाले से ज्यादा तृप्त और तुष्ट अनुभव करता है।

इसके विपरीत राजसी दान देने वाला दान देकर भी असंतुष्ट और अतृप्त अनुभव करेगा; क्योंकि वह उसे प्रत्युत्तर की कामना से क्लेशपूर्वक कर रहा है। श्रीभगवान कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति का दान फिर क्लेशपूर्वक किया गया दान हो जाता है। (क्रमशः)

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

प्रबुद्धों को आमंत्रण
(उत्तरार्द्ध)

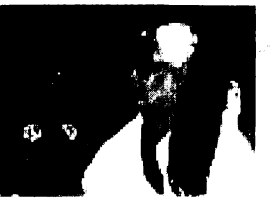

विगत उद्बोधन में आपने पढ़ा कि परमवंदनीया माताजी अपने इस हृदयस्पर्शी उद्बोधन में समस्त गायत्री परिजनों को यह स्पष्ट आश्वासन प्रदान करती हैं कि जीवन के हर उतार एवं चढ़ाव में गुरुसत्ता का साथ उनके साथ सदैव बना रहेगा। वंदनीया माताजी प्रबुद्धों को आमंत्रण देते हुए कहती हैं कि प्रबुद्ध होने का अर्थ भावनाओं के जागरण से है। जिनकी भावनाएँ जाग्रत हो जाती हैं, जिनके हृदय आत्मीयता से सिक्त हो जाते हैं एवं जिनके मनों में गुरुसत्ता के लिए कुछ करने का भाव जाग जाता है, वे प्रबुद्ध कहलाने के अधिकारी बन जाते हैं। वंदनीया माताजी कहती हैं कि हमें प्रबुद्ध होने के नाते अपनी-अपनी जिम्मेदारियों को समझने की गहन आवश्यकता है तथा स्वयं को वैश्विक मानवता के लिए समर्पित करने की आवश्यकता है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

विश्व के लिए समर्पित हों

बहुत दिन हुए हम और गुरुजी एक जगह गए, नाम तो नहीं लूँगी। हजार कुंडीय यज्ञ हुआ था। जब गए, तो वहाँ एक लड़का देखा, बहुत गोरा-चिट्टा बैठा था। एक तरफ उसकी औरत, एक तरफ उसकी माँ बैठी थी। वह झूम रहा था और चिल्लाने लगा—गायत्री माता आ गई। अब उसकी औरत और उसकी माँ ने उसकी पीठ को ठोक-ठोककर लाल कर दिया। वह भी उन्माद में आ गई।

मैंने गुरुजी से कहा—चलिए साहब! प्राण बचाने हैं, तो यहाँ से चलें, भीड़ के मारे यहाँ दम निकला जा रहा है। मैंने कहा—कुंडों की गरमी और भीड़ की गरमी, ऊपर से शेखचिल्ली बने बैठे, पागल जो यह कहते हैं कि हमको तो दिखाई नहीं पड़ा, हमको तो चमक नहीं दिखाई पड़ी, गुरुजी नहीं दिखाई पड़े, गायत्री माता दिखाई नहीं पड़ीं। गायत्री माता तेरे पास इतनी दूर से आई हैं और तू कहता है कि हमको तो नहीं दिखाई पड़ीं। स्वप्न में दीख जाएँगी तो क्या हो जाएगा तेरा?

एक और लड़का आया, उसने कहा—साहब! पहले तो दिखाई पड़ता था। वह, अब मुझे नहीं दिखाई पड़ता। मैंने जोर से डाँट लगाई और कहा—दस सालों में तूने यहाँ आ करके शक्ल दिखाई है, पहले यह बता कि अब तक मिशन का क्या कार्य किया? तब तुझे दिखाई पड़ते थे और अब दिखाई नहीं पड़ते हैं। तब तूने क्या किया था? दस साल में तूने अब यहाँ आ करके शक्ल दिखाई है, हृदयहीन कहीं का।

इस पागलपन को तो अलग रखना चाहिए; लेकिन यह मानना चाहिए कि गुरुजी आपके साथ हैं। गायत्री माता आपके साथ हैं, हम आपके साथ हैं। हर क्षण आपके हृदय में हम विराजमान हैं, हर

क्षण आपकी साँस में हम विराजमान हैं। बेटे! यह हमारा समर्पण है। मिशन के लिए, विश्व के लिए आपका भी समर्पण होना चाहिए।

बेल आपने देखी होगी। बेल जब समतल जमीन पर होती है, तो उसका कोई अस्तित्व नहीं होता है और जब वह पेड़ से लिपटने लगती है, तो ऊँची चढ़ती हुई चली जाती है और पेड़ के समान हो जाती है। पेड़ के समान ऊँचाई पर जा पहुँचती है। यह है समर्पण। आग और ईंधन जो कि सुबह आप ध्यान में सुनते हैं, जब लकड़ी आग के लिए समर्पित हो जाती है, तो उसका स्वरूप लाल हो जाता है। अँगारे में जब तक परत जमी रहती है, तो उसका जो मूलस्वरूप है, दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि उसके ऊपर राख की परत पड़ी हुई है और उसकी सफेद वाली परत हटा दीजिए, तो लाल अँगारा दहकता हुआ दिखाई पड़ेगा।

पतंगे और दीपक का समर्पण

बेटे! पतंगे का और दीपक का समर्पण है। भगवान के लिए यदि हम समर्पित हैं, तो हमें समर्पित जीवन जीना चाहिए। लोक-मंगल के लिए, समाज के लिए, राष्ट्र के लिए हमको समर्पित होना चाहिए। यदि हम समर्पित हैं, तो हमारा जीवन धन्य है, नहीं, तो बेटे धिक्कारने योग्य है कि हमको मनुष्य योनि मिली, फिर भी हम बरबाद करते हुए चले गए। किसके लिए? मुट्ठी भर व्यक्तियों के लिए, जिनमें हमारा बच्चा, बीबी, माँ, बहन, भाई, कुटुंब जिनको हम अपना कहते हैं। बस, इसी के लिए जन्म लिया था क्या? इसको तो कीड़े-मकोड़े और पशुयोनि कहते हैं।

बेटे! आप बुरा मत मानना, बुरा आपको लगता है, तो क्षमा करना; लेकिन ये पशुयोनि होती है, जो केवल खुदगर्जी के लिए जीना चाहता है, दूसरों के लिए नहीं। बेटे! पीड़ा-पतन में जो कराह रहा है और अंधी आँखें पुकार रही हैं, जो चीत्कार हो रहा है, उसको आप नहीं सुन रहे क्या? उसको यदि आप नहीं सुन रहे हैं, तो फिर गुरुजी के प्रति आपका क्या समर्पण है? उनका समर्पण है, जो दिन-रात सोते भी नहीं हैं और दो लेख लिख करके तब पानी पीते हैं। बेटे! समर्पण उनका है, जो कि सारे समाज को एक चेतना देने के लिए और उसको सुधारने के लिए दिन-रात यही चिंतन करते रहते हैं कि हमको क्या करना चाहिए, हम क्या कर सकते हैं, इसको क्या दिशाधारा दे सकते हैं और वह हम करते हैं।

कहाँ तक सफल होंगे? यह तो भगवान मालिक है, कोई हमारी जिम्मेदारी नहीं है, पर जो कुछ भी हम कर सकते हैं, वह तो हम करें। तो आप भी यही करिए कि यहाँ से जा करके एक नई चेतना ले करके जाइए, नई उमंग ले करके जाइए, नया उत्साह लेकर के जाइए और मानव के भीतर वह आग फूँकिए कि बस, आनंद आ जाए।

टॉम काका की कुटिया

अमेरिका में एक नाटी-सी औरत थी, मैं जरा उसका नाम भूल गई (हैरिएट स्टो)। उसने एक पुस्तक लिखी—" टॉम काका की कुटिया।" उसने जो पुस्तक लिखी, उससे समस्त अमेरिका में जो आग फैली, तो उससे तहलका मच गया कि गोरे और काले का भेद कैसे रह सकता है? और जिस दिन स्वाधीनता मिली, तो उसको टेबल पर खड़ा कर दिया कि यही वो नाटी-सी औरत है। जिसने कि मिट्टी में प्राण फूँक दिए, मिट्टी में प्राण डाल दिए इनमें प्राण डालने की आवश्यकता है।

इसमें प्राण कौन डालेगा? आप लोग डालेंगे, जो यहाँ उपस्थित हैं। यह मिट्टी का शरीर है, इसमें प्राण डालने हैं, आपको प्राण फूँकने हैं। जहाँ कहीं भी आप जाएँ, सुधार की बात करिए। गिरावट की

नहीं, गिराने की नहीं, उठाने की। हर व्यक्ति को उठाइए, हर मजहब वालों को उठाइए। हमें मजहब से कोई लेना-देना नहीं है। हमें जातिवाद से कुछ लेना-देना नहीं है।

हमारी जाति एक—मानव जाति

हमारी तो सब एक ही जाति है। वह मानव जाति है और मानव जाति की सेवा मानव नहीं करेगा, तो आ करके कौन करेगा, आप लोग नहीं करेंगे, तो कौन करेगा? आपको करना चाहिए, यह बीड़ा आपको उठाना चाहिए, यह शपथ आपको लेनी चाहिए। यह संकल्प आपको करना चाहिए, जिसके लिए हम आपको आमंत्रित करते हैं, आपको बुलाते हैं और आप अपने आप भी आते हैं।

आप तो भावनाओं से आते हैं, श्रद्धा से आते हैं, लेकिन इस श्रद्धा को थोड़ा-सा फलने दीजिए। श्रद्धा यदि आपके अंदर है, तो आपकी करुणा मानवमात्र के लिए जगनी चाहिए और उसकी सेवा होनी चाहिए।

किन-किन रूपों में आप सेवा कर सकते हैं? उस सेवा का बाह्यस्वरूप हमारे कार्यकर्त्ता आपको बताएँगे। आप झोला पुस्तकालय के माध्यम से करेंगे; क्योंकि जब तक अज्ञान का अंधकार नहीं हटेगा, ज्ञान का उदय नहीं होगा। ज्ञान का उदय तब होगा, जब व्यक्ति स्वाध्याय करेगा, स्वाध्याय नहीं करेगा, तो अज्ञान का अँधेरा हटेगा ही नहीं। वह तो कूपमंडूक है।

हमारे यहाँ यह होता है कि शादी होती है, तो बिल्ली मार के रखी जाती है। कभी किसी के यहाँ कोई ब्याह-शादी हो रही थी। बिल्ली मर गई तो यह सोचा गया कि भाई यह जो बिल्ली मर गई है, जब बरात यहाँ से चली जाए और लड़की के फेरे पड़ जाएँ, तब इसको निकालना शुभ होता है तो डलिया के नीचे ढककर रख दी।

अब वह परंपरा चल गई। उन्होंने कहा कि कहीं से बिल्ली लाओ और उसे मारकर रखो, तभी शादी होगी। किसी विचारशील ने कहा—पागल तो नहीं हो गए हो तुम? अरे बाबा वह तो किसी जमाने में कुछ हो गया होगा, बिल्ली बाईचान्स मर गई होगी। लकीर के फकीर बने ही रहेंगे? नहीं, ऐसा तो होता ही था, ऐसा ही करना चाहिए। नहीं, ऐसा नहीं करना चाहिए।

रात्रि हुई। तारों में आकाश में निकलने की उतावली बढ़ गई। असंख्य तारे आसमान में चमके, पर किसी ने उन पर ध्यान नहीं दिया। तभी स्वाति नक्षत्र आसमान में उदीयमान हुआ तो हर दृष्टि उसी दिशा में चली गई। यह देखकर चंद्रमा तारों से बोला— "सृष्टि में सारी कीमत धैर्य की है। उतावलेपन की सभी अनदेखी करते हैं, पर धैर्यवान सदा सफल होता है। तुम लोग बाहर निकलने के लिए इतने लालायित थे, पर सारा आदर और सम्मान स्वाति नक्षत्र को मिला। स्वाति नक्षत्र को मिलता सम्मान उसके धैर्य के कारण है।"

तारों को धैर्य की कीमत समझ आ गई।

प्रगतिशील विचार रखें

हम प्रगतिशील विचारों के हैं, तो प्रगतिशील ही विचार करिए। आप प्रगतिशील विचार ही औरों को दीजिए, मैंने आज आपसे यह एक निवेदन

किया है। आप ये कहेंगे कि हम अपने दु:ख-कष्ट-कठिनाई लेकर के आए थे, हम उसे तो आपसे कह भी नहीं सके। हाँ, बेटा! आप ठीक कह रहे हैं कि आप लगभग हजार के करीब आए हैं। एक-एक से बात कैसे की जाएगी? लेकिन हम आप सबके अंत:करण की बात जानते हैं।

ऐसा कोई भी नहीं बैठा है, जिसके अंत:करण की बात हमको मालूम नहीं है, सबकी हमको मालूम है और जो भी कुछ कर सकते होंगे, आपके लिए जरूर करेंगे। बेटे! हम- गुरुजी ऐसे खिवैया हैं, जिनकी नाव में जो कोई भी बैठा है, न तो डूबा है और न हमने डूबने दिया। हम आपके रथ को चलाएँगे, हम आपके जीवन की नाव के खिवैया बनेंगे और हम आपके जीवन के रथ के दो पहिये बनेंगे। आपके रथ को हम चलाएँगे, लेकिन आप जरा अपनी संकीर्णता को तो छोड़ दीजिए।

नहीं, हमने तो गुरुदेव आपके हाथों में सब सौंप दिया। क्या सौंप दिया तूने? ये सौंप दिया है कि आप हमारी चार लड़कियों का विवाह कराओ गुरुजी! तनख्वाह भी हमारी कम है, सो गुरुजी! सौंप दिया सब भार तुम्हारे हाथों में। तुमने क्या भार सौंप दिया है? अरे सौंपना उसको कहते हैं कि जब सौंप दिया, तो पूरे दिल से सौंप दिया। जो कुछ आपको कराना है, कराइए, अब आपके हवाले हैं, आप क्या कराना चाहते हैं। जो चाहें, आप हमसे काम ले सकते हैं, हम आपके हवाले हैं। आप लीजिए तब तो हम समझें, आपने समर्पण कर दिया है, कर दीजिए शादी। अच्छा तो यह मामला है। तूने बेवकूफ समझ रखा है।

बेटे! गुरुजी, तो ऐसे नहीं मिल गए। आपकी जो समस्या है, वह हमको मालूम है। हमने आपकी गारंटी ली है, अपने ऊपर आपकी जिम्मेदारी ली है कि आपके जीवन की नाव को हम चलाते रहेंगे। आप हमारी नाव में बैठे हैं, तो आप डूब नहीं सकते। किसी भी कीमत पर आपको नहीं डूबने देंगे। न हम डूबते हैं, न किसी को डूबने देते हैं। हम तो जो डूबता है, उसको भी उठाकर किनारे पर लगाने वालों में से हैं, किनारे पर लगाते हैं। उसको भी कहते हैं—बेटा! डूबो मत, तुझे शोभा नहीं देता। तू इनसान है, इनसान का हौसला रख, ब्राह्मण होकर के जी।

कौन होता है ब्राह्मण

ब्राह्मण कौन होता है? ब्राह्मण वह होता है, जो सारे संसार को देता है। ब्राह्मण वर्ग नहीं होता, जाति नहीं होती है। ब्राह्मण एक सिद्धांत होता है, एक भावना होती है, एक आदर्श होता है। किसी जमाने में हमारे यहाँ सात ऋषि थे। वे सारे विश्व को सँभालते थे। आज हमारे यहाँ, अब तो नहीं हैं, 25 साल पुरानी बात कहती हूँ कि तब का आँकड़ा था—56,00,000 संत थे। इतने संत किसे कहते हैं? इतने तो बेटे! फौजी भी नहीं हैं। इतनी तो मिलिट्री भी नहीं है, जितनी कि संतों की फौज है। जिनको हम संत कहते हैं, वे हरेक गाँव के पीछे सात आते हैं। कहीं निरक्षरता रह जाएगी? अनाचार-अत्याचार रह जाएगा, गुंडागर्दी रह जाएगी, कैसे रह सकती है? लेकिन बेटे! अब क्या कहें? बस, यहीं रहने दे।

इनको संत कहेंगे? नहीं, बेटे! संत कहने में लज्जा आती है। हे भगवान! कहीं संत हों और वे खड़े हो जाएँ, तो उनके पाँव को धोकर के पियें, लेकिन संत कहीं दिखाई नहीं पड़ते। दुकानें तो दिखाई पड़ती हैं, दुकानें तो एक-से-एक बढ़िया आप देख लीजिए, दाढ़ी देख लीजिए, लंबा-चौड़ा तिलक देख लीजिए, काले-पीले कपड़े देख लीजिए, चाहे जैसे देख लीजिए; लेकिन ये सारा-का-सारा पाखंड और ढोंग होगा। संत होते, तो आज हमारे

देश की यह हालत न होती, फिर हमारा देश वह देश होता, जैसा कि गुरुगोविंद सिंह के समय था,जब एक ही ने कमाल कर दिया था। अभी भी एक ही पैगंबर ने कमाल कर दिया है।

समाज को भगवान मानें

एक कहानी जरा मैं भूल रही हूँ। एक पैगंबर थे, तो एक फरिश्ता जा रहा था। उसने कहा कि फरिश्ते! भाई यह तो बताओ कि आपके हाथ में यह क्या चीज लगी है? उन्होंने कहा—देखो, यह वह डायरी लगी है कि जो कोई समाजसेवा करता है, भगवान का जो सुमिरन करता है, उसकी है। उन्होंने कहा कि अच्छा जरा पलटकर देखना कि क्या इसमें कहीं मेरा नाम है? उन्होंने पलटकर देखा, तो उसमें कहीं नाम नहीं था।

उन्होंने कहा कि मैं सारी जिंदगी उपासना करते रह गया। मेरा तो इसमें कहीं नाम ही नहीं है। बहुत दिन हो गए, दोबारा वह फरिश्ता फिर लौट-घूम करके आया। फिर उसने डायरी देखी। उन्होंने कहा साहब! बताइए, अबकी बार इस डायरी में क्या है? उन्होंने कहा—अब की बार भक्तों की वह डायरी है, जिसमें अल्लाह ताला उनका सुमिरन करता है। उन्होंने कहा—इसमें तो मेरा नाम हो ही नहीं सकता। उन्होंने कहा कि आप ऐसे अधीर क्यों होते हैं? पन्ना पलटकर देखते हैं। उन्होंने पलटा तो पहले ही नंबर पर उसका नाम था ।

क्यों? उसने समाज को पहला भगवान माना था। उन्होंने कहा कि खुदा इनमें हैं, भगवान इनमें हैं। किसमें? यह जो बैठे हैं। इनकी सेवा से हम मुँह मोड़ते हैं और जाने कहाँ-कहाँ पल्ला फैलाते हैं। नहीं, बेटे! हमको इस भगवान का भी सुमिरन करना है। उस भगवान के पास बैठना अत्यंत आवश्यक है; क्योंकि जो मल और विक्षेप जीवात्मा पर पड़े रहते हैं, इनको धोने के लिए आत्मशोधन के लिए भगवान के पास बैठना बहुत जरूरी है।

आप गायत्री मंत्र की उपासना जरूर करिए। चाहे किसी भी मजहब के आप मानने वाले हों, कोई भी बैठे हों, इससे कोई मतलब नहीं है। जो भी आपका मजहब हो, जो भी आपका धर्म हो, आप कम-से-कम आधा घंटा तो बैठिए। आधा घंटा नहीं, तो 15 मिनट ही बैठिए। आप भगवान से यह तो प्रार्थना कीजिए कि हे भगवान! हमको कुछ नहीं, हमको आत्मबल चाहिए, आत्मबल दीजिए। आत्मबल हमें मिल गया, तो हमको सब कुछ मिलेगा, आत्मबल नहीं मिला, तो जो आएगा सो ही दबोचता चला जाएगा, जरा किसी ने आँख दिखाई तो बस, प्राण निकल गए।

भगवान से साहस माँगिए

यह हिम्मत है आपके पास कि तन कर खड़े हो जाएँ कि देखें क्या कर लेगा? भगवान से वो रूहानियत माँगिए, वह हिम्मत माँगिए। एक ही चीज हिम्मत माँगिए, हिम्मत और साहस। अभी मैंने कहा था कि ब्राह्मण वह होता है, जो समस्त संसार को देता है। वह ज्ञान देता है। शरीर से जो कुछ भी उससे बनता है, वह देता ही रहता है। दूसरी एक बात और मैं कहना चाहती थी कि आप क्षत्रिय होकर रहिए।

क्षत्रिय कौन होता है? अभी तो आप ब्राह्मण बना रही थीं, अभी क्षत्रिय बना रही हैं। अब जाने तीसरे नंबर पर क्या बनाती फिरेंगी? नहीं, बेटे! मैं दो ही बनाऊँगी और कुछ नहीं बनाऊँगी। ब्राह्मण तो आप सभी हैं, हम सबको ब्राह्मण मानते हैं। मैंने कहा न-ब्राह्मण एक सिद्धांत, एक भावना है, एक विचारणा है।

कौन है क्षत्रिय?

ब्राह्मण वह होता है, जो सारे संसार को देता है और क्षत्रिय? क्षत्रिय क्या करता है? अनाचार-

अत्याचार के विरुद्ध तनकर खड़ा हो जाता है। देखा जाएगा, जो भी हमारे विपरीत परिस्थितियाँ हैं, उनको हम कुचलकर फेंक देंगे, रगड़कर फेंक देंगे। देखें परिस्थितियाँ क्या होती हैं? हमारे सामने कोई परिस्थितियाँ नहीं होतीं। परिस्थितियों का जो गुलाम हो जाता है, वह समय से पहले मर जाता है और जो परिस्थितियों को कुचलकर फेंक देता है, वह जिंदादिल होता है। आप शूरवीरों के तरीके से जिंदगी जिएँ, जैसे एक क्षत्रिय जीता है।

क्षत्रिय संग्राम में आगे-आगे चलता है और जो भगोड़ा होता है, पीठ दिखाकर चलता है, वह भगोड़ा कहलाता है। उसका कोर्टमार्शल करते हैं और जो आगे-आगे चलता है, वह शहीद होता है। मरता है तो क्या? शहीद होता है। अच्छे कार्य के लिए हमें अपनी जान भी देनी पड़े, तब भी हम देंगे। व्यक्ति हमें हाड़-मांस का दिखाई तो पड़ता है; लेकिन उसके अंदर हम देवत्व का उदय चाहते हैं। हम चाहते हैं कि हर इनसान में देवत्व का उदय होना चाहिए।

आप घर-घर जाइए और उस देवत्व को जो सो गया है, जो देवता सो गया है, जो हमारा भगवान सो गया है, हमारे जीवात्मा में समाया हुआ जो भगवान आज सो गया है, हम उसे पुनः उठाने के लिए कोशिश करें, तो एक-न-एक दिन हमारा भगवान जाग जाएगा, हमारा पुरुषार्थ जाग जाएगा और जहाँ हमारा पुरुषार्थ होगा, जहाँ हमारी भावनाएँ होंगी, जहाँ हमारी निष्ठा होगी और जहाँ हमारी श्रद्धा होगी, तो बेटे! वहाँ तो न जाने हम क्या कर सकते हैं? हम क्या नहीं कर सकते।

अभी बिहार में जो गवर्नमेंट आई है, उसने कहा है कि हम आपके यहाँ नैतिक शिक्षण के लिए 8000 व्यक्तियों को भेजेंगे और आप प्रशिक्षण दे दीजिए। मैंने कहा—अभी तो यूपी गवर्नमेंट के नहीं निपटे हैं, तो अभी आपके कहाँ से कर दें? अभी 1000 का तो हमने कह दिया है, जो कि अभी यहाँ से चलेगा। यह दिसंबर से शुरू होगा। हमने कहा है कि 8000 का हम नहीं कर सकते। हम केवल 1000 का कर सकते हैं, आप 1000 भेज दीजिए।

जो भी हमारी औकात है, हम जी-जान से इनके लिए कोशिश करेंगे और हम इनमें विचार डालेंगे; ताकि वे अपने यहाँ जा करके अपने परिवार और कुटुंब और शिक्षकों में अथवा विद्यार्थियों में वह प्राण फूँकें; ताकि अच्छे नागरिक पैदा हों। यह हमने उनसे कहा है। हमने यहाँ एक स्वावलंबन विद्यालय लगाया है। आप उसको देख करके जाइए, हम चाहते हैं कि हमारी हरेक शाखा में, हरेक शक्तिपीठ में जहाँ शिक्षा तो है; लेकिन रोजी-रोटी नहीं है। शिक्षित होकर तो निकलते जा रहे हैं, पर नौकरी नहीं है। तो आखिर पेट कैसे भरा जाए? उसके लिए आप यहाँ का स्वावलंबन विद्यालय देख करके जाइए।

यह आपको अपने यहाँ करना है। आप यहाँ ट्रेंड हो जाइए और आप वहाँ करिए। आप अपनी महिलाओं को यहाँ भेजिए; ताकि वे सब एक महीने का प्रशिक्षण ले जाएँ और संगीत से लेकर के, संभाषण से लेकर, कर्मकांड से ले करके ऐसी विद्वान हो जाएँ कि बस, यह कहें कि पूरी पंडित बना करके भेजी हैं। यह लड़की भेजी है; क्योंकि वह हमारी है न। हमारी है, तो उसके लिए हम जी-जान से कोशिश करेंगे। तो जैसे भी आपके यहाँ से आएगी, उसे हम बना देंगे, पर अँगूठा छाप नहीं चाहिए।

बेटे! इनका हम क्या करेंगे? तीन महीने का हमने प्रशिक्षण चलाया था। हमने यह सोचा था कि तीन महीने हम इनको प्रशिक्षण दे देंगे, तो सारे-

के-सारे हिंदुस्तान से बाहर जो अपनी शाखाएँ और शक्तिपीठें हैं, ये लोग वहाँ काम करेंगे और वहाँ जाग्रति आएगी।

जीवंत की जरूरत है

माताजी! हम तो अब आ गए, हम तो जीवनदानी हैं। अच्छा मुबारक है, अब मुझे मन-ही-मन हँसी आई और मैंने कहा—मुँह पर आ गई, यह बात, तो आपसे तो कह ही दूँ। उससे तो मैंने नहीं कही, पर अब कह रही हूँ कि इनके लिए कफन-काठी और चाहिए होगी और ऐसों की जरूरत नहीं है। यहाँ तो जीवंत व्यक्तियों की जरूरत है। आप में से जो भी लड़कियाँ बैठी हैं, इनमें से आप आइए, तो हम आपको यहाँ से बना करके भेजेंगे और आप औरों को बनाइए। इनके पास इतना फालतू समय होता है कि रोटी के अलावा कौन-सा काम है? वह भी आजकल गैस चल गई है।

बेटे! घर-गृहस्थी का कोई ज्यादा काम नहीं है। यदि बचाना चाहें, तो घर-गृहस्थी का इतना काम कर सकती हैं। ये महिलाएँ बड़ा गजब का काम कर सकती हैं। ये हमसे ज्यादा व्यस्त नहीं हैं। हम समय निकाल सकते हैं, तो ये समय क्यों नहीं निकाल सकती हैं? यह समय निकाल सकती हैं। दो से पाँच बजे तक का जो तीन घंटे का टाइम होता है, ये घर-घर जाकर के यह कार्य कर सकती हैं। इनको आगे आना चाहिए। हिम्मत से आना चाहिए। मरी-मराई नहीं कि उठी तो एक घंटे में नहा ही रही हैं। अच्छा, एक घंटे में कितना नहाया जाता है? एक घंटे में सौ आदमी नहा लेंगे। अरे जरा नहाए-धोये छुट्टी हो गई।

नहीं, साहब! जहाँ बैठे हैं, वहीं कोई गिलास हाथ में लगा, तो उसी को धो रहे हैं, उसी को रख रहे हैं। सारे काम का जो फेर होना चाहिए, वह काम का फेर ही नहीं होता। काम का फेर हो, तो हम कहते हैं कि दस व्यक्तियों को करके खिलाना पड़े, तब भी खिला सकते हैं। आप मुझे छोड़ दीजिए और पचास व्यक्ति बैठ जाइए, न खिला दूँ, तो चाहे जो कहना। आपको मोटी-तगड़ी दिखती हूँ, बहुत चलने में जरा कमजोर हूँ; लेकिन हाथ कमजोर नहीं हैं। मेरे हाथ काम में खूब चलते हैं। आपको वह फुरती, वह चुस्ती रखनी चाहिए, तभी आप लोग समाज की सेवा कर पाएँगे। उससे पहले आप समाज की सेवा नहीं कर पाएँगे।

हमें आप से बहुत उम्मीद है। जितनी उम्मीद इनसे है, उससे ज्यादा आप लोगों से है। क्यों? इनसे क्यों कम है और आपसे क्यों ज्यादा है? आपसे ज्यादा यों है कि नारी हमेशा भावनाशील रही है। यह तो त्याग की देवी है, जितना इसका गुण-गान करें, उतना ही कम है। आप यों कहेंगे कि माताजी तो पक्षपात कर रही हैं। नारी जाति का इतना गुण-गान कर रही हैं और हमें यह क्या कह रही हैं?

त्याग की मूर्ति—नारी

बेटे! आपकी औकात हम जानते हैं, इसलिए आपसे कह रहे हैं। आपकी भी हमें मालूम है, क्योंकि आप हमारे हैं, तो आपकी नस-नस हमें मालूम है और आप हमारी हैं, आप तो त्याग की मूर्ति हैं, आप तो देवी हैं। आपके अंदर भावना है। नारी जो संकल्प कर लेती है, आजीवन निभा लेती है। कल मैंने आप लोगों से कहा था कि इनका नंबर नहीं आया था, आपका नंबर आया था, तो मैंने यह कहा था कि नारी जिस समय संकल्प लेकर खड़ी हो जाती है, तो बड़े-से-बड़ा काम कर लेती है।

हमारे यहाँ यूपी में हाथरस के पास एक अकेली महिला लक्ष्मी देवी ने उदाहरण प्रस्तुत कर दिया था और कल-परसों ही हमारे हिंदुस्तान की प्रधानमंत्री

कौन थी? नारी थी न। और लक्ष्मीबाई कौन थी? नारी थी न। स्वतंत्रता के लिए कितना काम किया? अरे नारी न जाने क्या कर सकती है? वह तो ऐसे संत पैदा कर सकती है, ऋषि पैदा कर सकती है, अपने कुटुंब और परिवार को स्वर्ग बना सकती है और इन सबकी अक्ल ठिकाने लगा सकती है।

ये जो बैठे हैं, यह आपके पति के रूप में बैठे हैं, उन सबकी अक्ल ठिकाने लगा सकती है। कौन? पत्नी। पत्नी बड़ी जबरदस्त होती है, पत्नी को क्या समझ रखा है? वह जब तक दबती रहती है, तब तक दबती रहती है, उसका स्वभाव है, त्याग है, दबना ही चाहिए। चलिए यह तो मैं नहीं कहती, विद्रोह की भावना तो नहीं फैलाती; लेकिन एक बात मैं जरूर कहती हूँ कि त्याग में और प्रेम में इतनी शक्ति! इतनी शक्ति!! है कि व्यक्ति को कुछ-से-कुछ बना देती है।

मैंने कल संत तुलसीदास जी का उदाहरण दिया था और यह कहा था कि उनको बनाने वाली उनकी पत्नी थी और स्वामी श्रद्धानंद को बनाने वाली कौन थी? उनकी पत्नी थी, जिनका कि यहाँ स्थापित किया हुआ गुरुकुल कांगड़ी है। उन्होंने अपने जीवन चरित्र में लिखा है कि मेरी गुरु, मेरी पत्नी है। यदि मेरी पत्नी ऐसी नहीं होती, तो आज मैं इस स्थिति में नहीं आया होता। महिलाएँ बहुत काम कर सकती हैं। आपसे हमें बहुत उम्मीदें हैं, क्योंकि आप बहुत भावनाशील हैं। हम प्रत्येक के हृदय को देखते हैं, प्रत्येक की आँखों को देखते हैं, हम देखते हैं कि प्रत्येक के अंदर बहुत भावना है, बहुत कुछ कर गुजरने की भावना है।

बेटी! अपनी भावनाओं से अपने घर-गृहस्थी को बनाइए, कुटुंब को बनाइए, बच्चों को बनाइए, उन्हें संस्कार दीजिए। ये संस्कारविहीन हैं। पति, वह भी बे-संस्कार का है। उसके माँ-बाप में ही संस्कार नहीं थे, तो उसमें संस्कार कहाँ से आते? वही बे-ताज का बादशाह है, उसको बनाइए। उसको बनाना आपका काम है। बच्चों को बनाना आपका काम है। जीजाबाई ने शिवाजी को बनाया था। बनाया था कि नहीं बनाया था?

बनाया था। गुरु का वरदान मिला? हाँ, गुरु का वरदान भी मिला था, पर शिवाजी को माँ ने बनाया था। अनेकानेक नारियों ने कितना काम किया है? आप बहुत कुछ काम कर सकती हैं। आप से हमें बहुत आशा है। बेटे! आप लोगों से भी आशा है कि आप लोग यहाँ से जो विचार लेकर के जा रहे हैं, ये किनके विचार हैं?

गुरुजी के विचार ले जाएँ

ये बेटे गुरुजी के विचार हैं। ये सिद्धांत किनके हैं? गुरुजी के हैं। वाणी अपनी अलग-अलग है। हमने अलग तरीके से कह दिया। कार्यकर्त्ता हमारे अलग तरीके से कहते हैं—अलग-अलग भाषा, अलग-अलग शैली। भाषा तो एक ही है— हिंदी भाषा, लेकिन शैली अलग-अलग है। शैली से क्या है? हमारे सिद्धांत और भावनाएँ तो एक ही हैं।

हमने कहा—तो गुरुजी ने कहा और गुरुजी ने कहा—तो हमने कहा, बात एक ही है तो यहाँ से आप भावनाएँ लेकर के जाइए और प्यार के सागर में बस, छलकते जाइए। जहाँ आप आए हैं, उस सागर में प्यार-ही-प्यार बरसता है। हर किसी में आप प्यार-ही-प्यार पाएँगे। इस समुद्र में आप भरपूर डुबकी लगाइए, भरपूर प्यार लेकर के जाइए और सर्वत्र इस प्यार को बिखेरिए। इस प्यार के छींटे हर मानव पर पड़ने चाहिए। जो आपके ऊपर पड़ रहे हैं, वही दूसरों के ऊपर भी पड़ने चाहिए। इन शब्दों के साथ मैं अपनी बात समाप्त करती हूँ।

॥ ॐ शांतिः ॥

दीक्षाभूमि बना विश्वविद्यालय

देव संस्कृति विश्वविद्यालय की स्थापना का उद्देश्य मानवीय व्यक्तित्व के अंदर उपस्थित परंतु प्रसुप्त क्षमताओं का जागरण करना रहा है। यदि ये संभावनाएँ, क्षमताएँ, सामर्थ्य फलीभूत हो जाते हैं; साकार हो जाते हैं—तो नर-को-नारायण बनते, नरेंद्र को विवेकानंद बनते एवं पतित को देवता बनते देखा जा सकता है। परमपूज्य गुरुदेव के द्वारा प्रदत्त चिंतन को केंद्र में रखकर देव संस्कृति विश्वविद्यालय का प्रारंभ-से ही यह भाव रहा कि युवाओं में उसी सोच को उभारा एवं सँवारा जाए।

यही कारण है कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय के सर्वाधिक आकर्षित करने वाले पाठ्यक्रमों में योग का नाम आता है। देव संस्कृति विश्वविद्यालय योग के क्षेत्र में न केवल सर्वाधिक पी-एच.डी. उपाधियों को प्रदत्त करने वाला विश्वविद्यालय रहा है, वरन योग के क्षेत्र में अनेकों राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सम्मानों को प्राप्त करने का सौभाग्य भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय को ही मिला है।

संभवतया यही एक ऐसा कारण है, जिसके कारण योग के क्षेत्र में कार्य करने वाले विद्वत्जनों से लेकर प्रशासनिक अधिकारी—इस दिशा में कार्य करने से पूर्व देव संस्कृति विश्वविद्यालय आना अवश्य पसंद करते हैं। विगत दिनों इसी क्रम में जीवन-विद्या के आलोक केंद्र देव संस्कृति विश्वविद्यालय में राजराजेश्वरी माँ की धरती सुरेंद्रनगर से गुजरात के माननीय सांसद एवं आयुष राज्यमंत्री श्री महेंद्र मुंजपरा जी का आगमन हुआ।

उनके आगमन पर उनकी भेंट देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी के साथ हुई, जिसमें उन्हें परमपूज्य गुरुदेव के सपनों के विश्वविद्यालय, इसमें अंतर्निहित सोच एवं यहाँ चल रही गतिविधियों से अवगत कराया गया। इस विषय में जानकर मंत्री श्री मुंजपरा जी ने अत्यंत हर्षित एवं आह्लादित अनुभव किया।

उनके आगमन के उपलक्ष्य में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मृत्युंजय सभागार में एक कार्यक्रम का आयोजन किया गया, जिसमें उन्होंने कहा कि परमपूज्य गुरुदेव की इस तपस्थली में आना मेरे लिए अत्यंत ही गौरव को प्रदान करने वाला क्षण है; क्योंकि शांतिकुंज एक जाग्रत तीर्थ है। वे बोले कि वे देवभूमि उत्तराखंड में स्थित समाज, राष्ट्र के नैतिक-सामाजिक एवं आध्यात्मिक पुनरोत्थान के साथ भारत की सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण हेतु संलग्न देव संस्कृति विश्वविद्यालय को हार्दिक शुभकामनाएँ अर्पित करते हैं।

उनके आगमन के कुछ ही दिनों के उपरांत देव संस्कृति विश्वविद्यालय की प्रवेश परीक्षा अपने सभी निर्धारित परीक्षाकेंद्रों पर सफलतापूर्वक संपन्न हुई। यह एक आश्चर्यजनक सत्य है कि आज के इस व्यवसायीकरण से भरे शिक्षा जगत् में जहाँ विश्वविद्यालय उनके यहाँ प्रवेश हेतु बड़ी राशि देकर एवं विज्ञापन देकर विद्यार्थियों को आकर्षित करने का प्रयत्न करते हैं तो वहीं देव संस्कृति विश्वविद्यालय मात्र पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी की विचार चेतना का प्रतिनिधि होने के कारण प्रत्येक वर्ष सैकड़ों विद्यार्थियों को अपने यहाँ आकर्षित करता नजर आता है। इस वर्ष की प्रवेश परीक्षा में सैकड़ों विद्यार्थी सम्मिलित हुए एवं

सभी निर्धारित सीटें बिना किसी विशेष प्रयत्न के सहजता से ही पूर्ण हो गईं।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय की प्रवेश परीक्षा में उत्तीर्ण हुए विद्यार्थियों को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ कि वे देव संस्कृति विश्वविद्यालय के तैंतालीसवें ज्ञानदीक्षा समारोह का अंग बन सकें। देव संस्कृति विश्वविद्यालय का यह ज्ञानदीक्षा समारोह मुख्य अतिथि श्री श्रीनिवास काटिकिथला जी, निदेशक लाल बहादुर शास्त्री प्रशासनिक अकादमी, मसूरी की गरिमामयी उपस्थिति में संपन्न हुआ।

इस समारोह के प्रारंभ में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के कुलपति श्री शरद पारधी जी ने सभी नए आए हुए विद्यार्थियों का स्वागत करते हुए उन्हें जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान की। इसके उपरांत ज्ञानदीक्षा पर्व की पृष्ठभूमि को नवागंतुक विद्यार्थियों के सम्मुख स्पष्ट करते हुए प्रतिकुलपति जी ने कहा कि ज्ञानदीक्षा का पर्व हमारी आंतरिक चेतना के आरोहण का पर्व है। यह पर्व ये याद दिलाने का पर्व है कि जीवन का मूल्य पैसे से नहीं, बल्कि पवित्रता से आता है; वैभव से नहीं, बल्कि व्यक्तित्व से आता है। अतः उसी को सँवारने और विकसित करने का प्रयत्न हमें करना चाहिए।

ज्ञानदीक्षा समारोह के इस पुनीत अवसर पर श्रद्धेय कुलाधिपति जी ने ज्ञानदीक्षा का संकल्प विद्यार्थियों को वर्चुअल माध्यम से कराया। संकल्प को प्रदान करते समय कुलाधिपति जी ने विद्यार्थियों को स्मरण दिलाया कि इन संकल्पों का अनुपालन कितना आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण हो जाता है। यहाँ यह स्मरण रखना अनिवार्य हो जाता है कि यह संकल्प न केवल देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विद्यार्थी लेते हैं, वरन देव संस्कृति विश्वविद्यालय के आचार्य-आचार्यागण भी इसको धारण करते हैं।

मुख्य अतिथि के रूप में आए श्री काटिकिथला जी ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आने को उनके जीवन का सबसे गौरवशाली क्षण बताया और यह कहा कि इस परिसर में आने पर जो अनुभूति उन्हें हो रही है, उसे शब्दों में व्यक्त कर पाना संभव नहीं है। वे अपना उद्‌बोधन देते समय भावविभोर हो गए और उन्होंने कहा कि हमें भारतीय समाज एवं संस्कृति के संरक्षण के लिए सम्मिलित रूप से प्रयत्न करने की आवश्यकता है। इसीलिए पूरा विश्व आज शांतिकुंज की ओर आशा से देख रहा है। ❑

रात ढलने को आई। रात भर जलता दीपक जब बुझने को हुआ तो उसकी लौ ने तेजी पकड़ी और फिर धीरे से बुझ गई। पास रखे दीपदान ने दीपक से पूछा—"मित्र! जब बुझना ही था तो इतना तेज प्रयत्न क्यों?" दीपक बोला—"मित्र! महत्त्व प्रयत्न की तीव्रता का है। मैंने बुझते-बुझते भी सघन अंधकार से लोहा लिया तो उसे कुछ क्षणों के लिए ही सही, हरा पाने में सक्षम हुआ। यदि सभी इसी तीव्रता से प्रयत्न करें तो इस धरा से अंधकार सदा के लिए चला जाए।" दीपक के त्याग का अर्थ दीपदान की समझ में तुरंत आ गया।

अपनों से अपनी बात

नवनिर्माण के युगनायक हैं हम

पौराणिक आख्यानों में जिस तरह से मत्स्यावतार की घटना का विवरण मिलता है, एक ऐसे ही मत्स्यावतार का अंग बन पाने का अवसर हम सभी गायत्री परिजनों को वर्तमान युग में भी मिला।

हम सब लोगों के जीवन में एक ऐसे अपरिचित सौभाग्य की वर्षा हुई है, जहाँ हम सभी ऋषियुग्मरूपी एक अवतारी चेतना के प्रतिनिधि के रूप में प्रतिष्ठित हो गए हैं। एक इस युग का मत्स्यावतार हमारी आँखों के सामने भी अवतरित हुआ है, जिसे गायत्री परिवार की संज्ञा देने में कोई अतिशयोक्ति न होगी।

ध्यान से देखें तो अभी 100 वर्ष भी पूर्ण नहीं हुए हैं और इसी अवधि में कुछ सौ अखण्ड ज्योति पत्रिकाओं के प्रकाशन से प्रारंभ हुआ, पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी के बहुत ही अल्प संसाधनों से प्रारंभ हुआ गायत्री परिवार, जो आँवलखेड़ा गाँव के एक छोटे-से पूजा कक्ष से आरंभ हुआ वो अखण्ड ज्योति संस्थान, गायत्री तपोभूमि, शांतिकुंज की यात्रा करता हुआ आज मत्स्यावतार की ही भाँति संपूर्ण विश्व के कोने-कोने में पहुँच चुका है। आश्चर्य नहीं होगा यदि आने वाले दिनों में संपूर्ण विश्व भी इसकी पहुँच में छोटा लगने लगे।

युगों पूर्व जो मत्स्यावतार घटा था, उसका उद्देश्य एक ही था कि प्रलय जैसी परिस्थितियों के मध्य में अच्छे लोगों के समूह को एकत्रित करके उनको सुरक्षित उस स्थिति में पहुँचा दिया जाए, जहाँ वो नवनिर्माण के महत्त्वपूर्ण दायित्व का निर्वहन सुरक्षित रूप से कर सकें।

इस दृष्टि से देखें तो आज के मत्स्यावतार का उद्देश्य भी बिलकुल वही है, जो युगों पूर्व था और वो ये कि अवांछनीयता की इन परिस्थितियों में अच्छे व पवित्र लोगों के समुदाय को सुरक्षित रखकर उनके माध्यम से सत्प्रवृत्तियों के विस्तार को संपन्न किया जाए।

आज की परिस्थितियों में हमें यह स्मरण रखने की जरूरत है कि भगवान आज की अंधकार से भरी परिस्थितियों को सदा-सर्वदा के लिए बदलने जा रहे हैं और ऐसा करने के लिए जिस समुदाय का चयन उन्होंने किया है—वो गायत्री परिवार है। न केवल गौरव, बल्कि उत्तरदायित्व के स्मरण का समय यही है।

हम सोचें कि यह उत्तरदायित्व कितना बृहत् एवं कितना महत्त्वपूर्ण है। एक गली की सफाई करनी हो तो कितनी व्यवस्था बनाने की जरूरत होती है और एक शहर की सफाई में तो और भी ज्यादा संसाधनों की एवं रणनीति निर्धारण की जरूरत पड़ती है।

उस परिप्रेक्ष्य में चिंतन करें कि हमारी यह जिम्मेदारी भला कितनी बड़ी है कि संपूर्ण जनमानस को बदलने की, उनके चिंतन में उत्कृष्टता लाने की, उनके व्यवहार में आदर्शवादिता लाने की, उनके व्यक्तित्व में सदाशयता लाने की जिम्मेदारी हमारी है।

ऐसा कार्य कर पाना प्रकाश के प्रतिनिधियों से ही संभव है। यह कार्य किसी और के बस का हो भी नहीं सकता। ऐसा इसलिए; क्योंकि रात समाप्त ही तब होती है, जब सवेरा होता है। सुबह का सूरज न निकले तो रात्रि के अंधकार

का अंत कर पाने की सामर्थ्य किसी में नहीं है। उसी तरह जनचेतना का जागरण हुए बिना वातावरण में व्याप्त अंधकार को समूल नष्ट कर पाना संभव नहीं है।

जब तक वातावरण में अँधेरा व्याप्त रहेगा, तब तक मनुष्य भ्रमित रहेगा, भयभीत रहेगा और भ्रांत रहेगा। जब तक अँधेरा छाया रहता है, तब तक भय, भ्रम और भ्रांति का वातावरण छाया रहता है और सूर्योदय के होते ही मनुष्य की आत्मचेतना पुष्ट हो जाती है।

आज भी वातावरण की विषाक्तता के कारण मनुष्य अपने जीवन के लक्ष्य को भुला करके बैठा है। जीवन का उद्देश्य, मानवीय जीवन की गौरव गरिमा सब इस अँधेरे के शिकार हो गए हैं और व्यक्ति अपनी जिम्मेदारी, कर्त्तव्य एवं दायित्व को भूलकर गुलछर्रे उड़ाने को जीवन का उद्देश्य मानकर के बैठा है। परिणाम में हरेक को मुसीबतों, तकलीफों के अलावा कुछ मिलता नहीं है। व्यक्ति उनके पास मँडराता तो सुख की चाह में है, पर लौटता दु:ख को लेकर है।

आज की परिस्थितियों का सारांश यही है कि व्यक्ति की सोच खराब हो गई है, प्रकृति हमसे नाराज है। मुसीबतों का अंबार लगा है; क्योंकि वातावरण अंधकार से ग्रस्त है। अंधकार का अंत सूर्योदय की लालिमा ही कर सकती है।

इस बार के सूर्योदय की जिम्मेदारी, जिसका उद्देश्य वातावरण में व्याप्त अंधकार को हटाना है, पूर्वीय चिंतन को, भारतीय चिंतन को, वैदिक चिंतन को दी गई है। इस चिंतन का आधार व्यक्ति की आत्मिक प्रगति है और इसका उद्देश्य मनुष्य का आध्यात्मिक उत्कर्ष करना है। ऐसा होना जरूरी है और उचित भी; क्योंकि भारत अकेला ऐसा देश रहा, जिसने यह चिंतन विश्व को दिया कि बिना आत्मिक प्रगति के भौतिक प्रगति अधूरी है।

आज की समस्याओं के मूल कारणों में से एक यही है कि आज मानवता के खाते में लौकिक प्रगति तो पर्याप्त है, पर आध्यात्मिक प्रगति शून्य है। सरकारें पंचवर्षीय योजनाएँ बना रही हैं, वैज्ञानिक शोधें करने में जुटे हैं, उद्योगपति उद्योगों को बढ़ा रहे हैं, सेनाएँ नए आयुधों का प्रयोग कर रही हैं, पर जो उपेक्षित पड़ा है, उसका नाम है धर्मतंत्र।

धर्म के नाम पर जो कहा और किया जा रहा है, वो तो अत्यंत चिंताजनक और अशोभनीय है। ऐसे में सांस्कृतिक जागरण संभव कैसे होगा? इस देश के सांस्कृतिक जागरण के लिए जिस धर्म की आवश्यकता है वो वही है, जिसे पूज्य गुरुदेव वर्षों पहले लिख-बोल-बता के गए।

यह मनोकामनाओं की पूर्ति करने वाला धर्म, यह अंधविश्वासों और मूढ़-मान्यताओं की पूर्ति करने वाला धर्म, यह विग्रह-विभाजन वाला धर्म, यह रूढ़ियों में जकड़ाने वाला धर्म भारत का धर्म नहीं है। भारत का धर्म पूज्य गुरुदेव का धर्म है, विवेकानंद का धर्म है।

पूज्य गुरुदेव ने वर्षों पहले लिखा भी था कि 'आने वाले समय में धर्म अपने वास्तविक स्वरूप में प्रकट होगा। संप्रदायवादियों के डेरे उखड़ जाएँगे। पाखंड पूजा के बल पर जीने वाले उल्लू उस प्रकाश से भौंचक होकर बैठेंगे और किसी कोटर में बैठकर गुजारा करेंगे। अगले दिनों ज्ञानतंत्र धर्मतंत्र होगा। धर्म अपने असली स्वरूप में निखरकर आएगा और उसके ऊपर चढ़ी हुई केंचुली उतरकर कूड़े-करकट के ढेर में जा गिरेगी।'

यह सब साकार करने की जिम्मेदारी हमारी है। हम महसूस करें कि हमारी जिम्मेदारी कितनी बड़ी है, हमारे दायित्व कितने विशाल हैं, कितने व्यापक हैं।

हम लोग महसूस करें कि हम महाकाल के प्रतिनिधि हैं और इस अवतरण के, नवनिर्माण के नायक हैं हम। यह समय हमें हमारे दायित्व को पहचानने का और उसके अनुरूप बीड़ा उठाने का है। ❑

राह नई तैयार है

समय विषम है, डगर कठिन है, जाना भी उस पार है।
छोड़ चलो यह रीत पुरानी, राह नई तैयार है॥

सोच पुरातन लिए सदा से, जीवन हमने बिताया।
उलझे रहे प्रपंच में अपने, क्षण कीमती गँवाया॥
शंख बज चुका महाप्रलय का, आगे आना होगा।
छोड़ चुके हम अवसर कितने, नहीं चूकना इस बार है॥
छोड़ चलो यह रीत पुरानी.....

कैसा भी हो संघर्ष, विजय तो सच की होती आई।
अंत नहीं परिवर्तित होगा, कितनी बढ़े बुराई॥
समय नहीं रुकता है कभी, गति हमें बढ़ानी होगी।
अभी नहीं तो कभी नहीं, युग की यही पुकार है॥
छोड़ चलो यह रीत पुरानी.....

कुरुक्षेत्र का अंत, बिना अर्जुन भी ऐसा होता।
नल-नील न होते, पर रावण का वध तो होता॥
महासमर प्रारंभ हो चुका, जीवन की आहुति दे दो॥
काम प्रभु का नाम तुम्हारा, कहो अनुबंध यह स्वीकार है॥
छोड़ चलो यह रीत पुरानी.....

युग की जैसी माँग हो, वैसे अध्याय लिखे जाते हैं।
युद्धभूमि में नए नियम के, संग्राम रचे जाते हैं॥
नए समय की परिभाषा है, रंग बदलना होगा।
ओढ़ चलो ये रंग वासंती, गुरुवर का त्योहार है॥
छोड़ चलो यह रीत पुरानी.....

—डॉ. चिन्मय

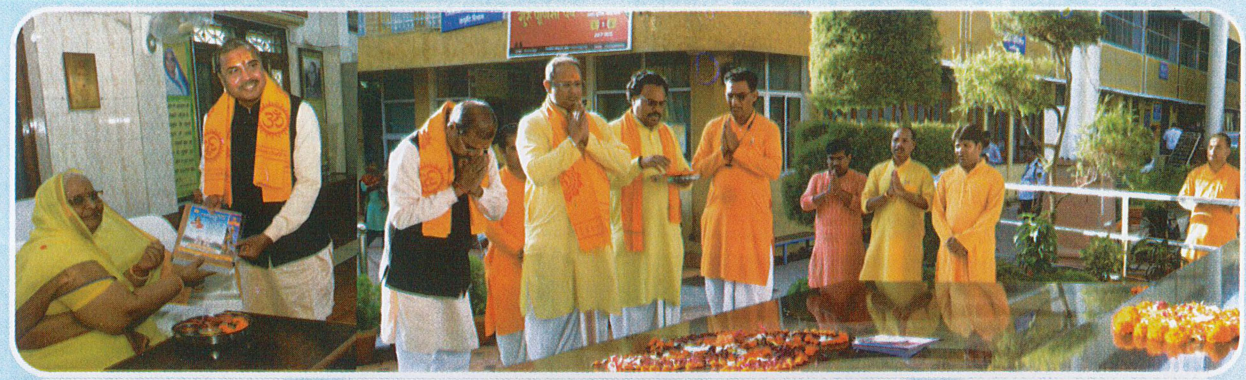

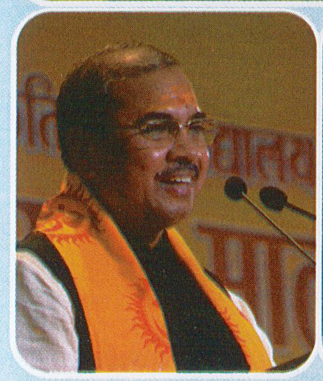

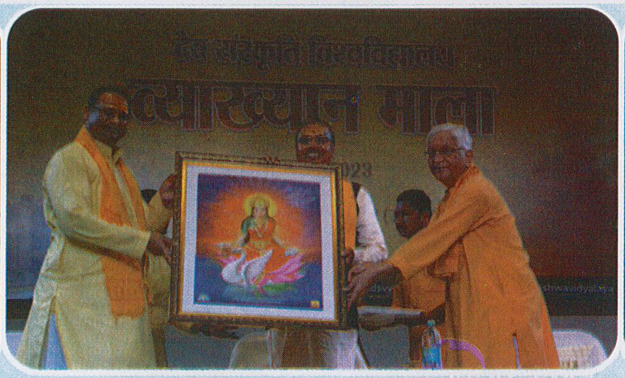

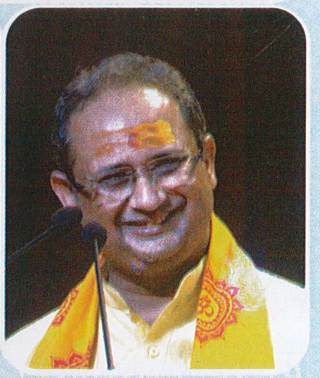

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के सभागार में स्वर्ण जयंती व्याख्यानमाला के अंतर्गत
(डॉ. मंजुपरा महेन्द्रभाई–राज्यमंत्री आयुष, महिला एवं बाल विकास द्वारा) छात्रों एवं शैक्षणिक संकाय की उपस्थिति में उद्‌बोधन

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. o1- 09 -2023
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2021-2023

हरिद्वार जनपद में अखिल विश्व गायत्री परिवार शांतिकुंज–हरिद्वार की आपदा प्रबंधन इकाई द्वारा बाढ़ पीड़ितों को चिकित्सा सहयोग एवं आवश्यक राहत सामग्री का वितरण

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक-डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल- akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org